प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

संपादक का वक्तव्य

लेखिका

हिंदी की इनी-गिनी लेखिकाओं में श्रीमती हेमतकुमारीदेवी भट्टाचार्य का आसन बहुत ऊँचा है। आपकी कई कृतियाँ इस समय हिंदी की शोभा बढा रही हैं, जिनमें स्त्री-कर्तव्य, वैज्ञानिक खेती, युक्त प्रदेश का व्यापार, हिंदू-महिलाओं का कर्तव्य, प्रयाग की प्रदर्शनी, आदर्श पुरुष रामचंद्र आदि मुख्य हैं। आप बंग-नारी हैं, किंतु युक्त प्रांत में जन्म लेने के कारण आप हिंदी को ही अपनी मातृभाषा मानती हैं, और उसी की उन्नति और श्री-वृद्धि के लिये आपने बहुत श्रम किया है। आप जो कुछ लिखती हैं, वह इतना अच्छा कि कई बार आपके लेख पुरुषों के कंपिटीशन में भी सर्वोत्तम समझे गए और पुरस्कृत हो चुके हैं। किंतु बड़े खेद की बात है कि जब से आप, अपने पतिदेव के पेंशन ले लेने पर, अपने गाँव जामग्राम (बंगाल) में जा बसी हैं, हिंदी की ओर से कुछ उदासीन-सी हो गई हैं। अतएव, ऐसी अवस्था में, यह कम हर्ष की बात नहीं कि इधर हमने आपसे दो पुस्तकें—(१) संक्षिप्त शरीर-विज्ञान, (२) संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा—लिखवा डालीं, और अब उन्हें गंगा-पुस्तकमाला में गूँथ रहे हैं। प्रकाशनार्थ अपनी पुस्तक देने के लिये आपको अनेक धन्यवाद।

श्रीमतीजी लखनऊ-निवासिनी हैं। सन् १८८६ में, लखनऊ ही में श्रीयुत उमेशचंद्र चौधरी के घर, आपका जन्म हुआ था, और

विवाह पंडित मार्कंडेयप्रसाद भट्टाचार्य के साथ सन् १८६६ में। आपका अधिकांश जीवन लखनऊ में ही बीता है। अपने लखनऊ-निवास के समय हमारी पूजनीया माताजी के पास आप अक्सर आया करती थीं। उनसे आपकी मित्रता थी। आपका उस समय का सरल स्वभाव, मृदुल और स्नेह-पूर्ण व्यवहार हमें अब भी याद है। आप सीने-पिरोने में निपुण, घर के काम-काज में दक्ष तो हैं ही, साथ ही आपका जीवन साहित्य-चर्चा में भी बीतता है। अतएव आप आदर्श हिंदू-नारी हैं। ईश्वर आपको चिरायु करें। हिंदी को आपसे अभी बहुत कुछ आशा है।

पुस्तक

संसार में स्वास्थ्य-रक्षा ही सबसे महत्त्व की, सबसे आवश्यक बात है। स्वास्थ्य ही जीवन का मूल है। जिसने इसे खो दिया, उसके लिये सारा संसार अंधकारमय है—उसे कोई लौकिक सुख सुलभ नहीं। वह सब प्रकार संपन्न होकर भी दरिद्री है। किंतु शरीर की भीतरी बातें जाने बिना स्वास्थ्य रक्षा आकाश-कुसुम है। शरीर-रूपी मोटर को जीवन-पथ पर भली भाँति चलाने के लिये मनुष्य रूपी ड्राइवर के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि वह सबका न सही, उसके खास-खास पुर्ज़ों का तो ज्ञान प्राप्त कर ले। मतलब यह कि सुख की सदिच्छा रखनेवालों को शरीर-शास्त्र से अवश्य परिचित होना चाहिए। जो लोग समयाभाव के कारण इस विषय की बड़ी-बड़ी पुस्तकें नहीं पढ़ सकते, वे, आशा है, इस पुस्तिका से यथेष्ट लाभ उठावेंगे, और लेखिका के तथा हमारे श्रम को सफल करेंगे।

यहाँ हम शरीर-विज्ञान के विशेषज्ञ, मित्रवर डॉ० त्रिलोकनाथ वर्मा को धन्यवाद देना आवश्यक समझते हैं, जिन्होंने इस पुस्तक के एक बार प्रूफ़ देखकर और अनेक संदिग्ध स्थलों को स्पष्ट करके हमें संपादन-कार्य में सहायता पहुँचाई है। पुस्तक की भाषा का

भी हमने पर्याप्त परिमार्जन कर दिया है। आशा है, इस पुस्तक से पाठकों का कुछ मनोरंजन और ज्ञान-वृद्धि अवश्य होगी।

दुलारेलाल भार्गव

वक्तव्य

[द्वितीयावृत्ति पर]

संतोष की बात है, हिंदी-संसार ने इस पुस्तक का आदर किया, और यू० पी०-गाँव-सुधार-विभाग ने भी इसकी २५० प्रतियाँ खरीदीं। हम हिंदी-संसार—विशेषकर गाँव-सुधार-ऑफिसर साहब—के कृतज्ञ हैं।

वसंत-पंचमी
१९९५

दुलारेलाल भार्गव

विषय-सूची

नर-शरीर

संक्षिप्त शरीर-विज्ञान

प्रथम अध्याय

नर-कंकाल

ड्डियों के अतिरिक्त कंकाल और कोई पदार्थ नही। इस पुस्तक मे शरीर का एक नक़्शा भी दिया गया है, जिससे साधारण आकृति के साथ कंकाल का क्या संबंध है, यह समझ मे आ जायगा। किंतु कोमल तंतुओं का उल्लेख नही किया गया। इससे मालूम होगा कि हड्डियाँ आयतन और गठन के अनुसार भिन्न-भिन्न है। उनमे कोई चौड़ी और कोई प्लेट के माफिक है—जैसे करोटी और उस स्थान की हड्डियाँ। कोई लंबी और कम चौड़ी है—जैसे बाहु और जंघा की हड्डियाँ। कोई छोटे-छोटे ब्लाक के माफिक हैं—जैसे मणि-बंध और चरण-ग्रथ की हड्डियाँ। तमाम शरीर मे सब मिलाकर २०६ हड्डियाँ है। आप नक्शे की कोई भी हड्डी लेकर मालूम कर सकते है कि वह कम-से-कम दूसरी

एक, दो या तीन हड्डियों से संलग्न है। जहाँ दो हड्डियाँ मिली है, वहाँ एक संधि है। उसके आकार मे भी विशेपता है। उसकी दृढ़ता के अनुसार दोनो हड्डियों मे न्यूनाधिक मात्रा से गति होती है। इसी कारण सब हड्डियाँ संधियों के द्वारा शरीर के केंद्र मे एक दृढ़ अथच नमनीय आकृति मे परिणत हुई है। वह आकृति भी कोमल अंशों से संबद्ध है। कंकाल की परीक्षा करने के पहले उसके उपादान के विषय मे एक बात कहना उचित है। बहुत आदमियो का विश्वास है कि वह कठिन अर्गलवत् (जजीर-सा) पदार्थ है। पर असल मे यह बात नहीं। वह सजीव पदार्थ और कोषों से गठित है। उन कोषों के छिद्रों मे कठिन मिट्टी के समान जो पदार्थ संचित है, वह हड्डियों की आवश्यक कठिनता के कार्य को संपन्न करता है।

यदि कंकाल के विषय मे विचार किया जाय, तो शरीर के केंद्र मे स्थित स्तंभ-सदृश मेरु-दंड (spinal column) की आलोचना करना उचित है। इसके संबंध मे अवशिष्ट हड्डियों का विचार करना चाहिए। मेरु-दंड तेतीस कशेरुओं (vertebræ) से सगठित है। उनमे २४ संधियाँ है, क्योंकि वे जीवन-भर अलग रहती है। नीचे की ९ झूठी है, क्योंकि वे त्रिकास्थि (sacrum) और चंचु-अस्थि (coccyx) दो विभागों के साथ मिल जाती है। इन चौबीस कशेरुओं मे सात ग्रीवा-संबंधी (cervical), बारह पृष्ठ-देशीय (dorsal) और पॉच कटिस्थ (lumbar) है। हरएक कशेरुका मे एक-एक

शरीर और एक-एक मेहराब है। हरएक शरीर सामने रहकर परस्पर दूसरी उपास्थियों (cartilages) और बंधनियों के द्वारा परस्पर संयोजित है। मेहराबें पीछे की ओर, बंधनी के द्वारा, दृढ़ रूप से संयुक्त हैं। मेहराब के पीछे की तरफ एक चोंगे-जैसी नली परस्पर अविच्छिन्न रूप मे अवस्थित है। उस नली के चोंगे के भीतर, जीवितावस्था मे, सुषुम्ना भरी है। यह बात मैं पहले कह चुकी हूँ कि नीचे की ९ कशेरुकाएँ त्रिकास्थि और चंचु-अस्थि के साथ मिल जाती है। त्रिकास्थि वस्ति-गह्वर (pelvis) के आस-पास रहकर उसे बाँधे हुए है। चंचु-अस्थि ऊपर की ओर घूमी हुई कील-जैसी है। यही हमारे पैत्रिक पुच्छ का ध्वंसावशेष है। सारा मेरु-दंड लंबाई मे पर्याय क्रम से हड्डियों और संधियों के द्वारा गठित है। उसकी शक्ति और स्थिति-स्थापकत्व इतना अधिक है कि उसे पीछे और सामने की तरफ झुकाया और एक तरफ से दूसरी तरफ सहूलियत से घुमाया-फिराया जा सकता है।

मेरु-दंड के ऊपर करोटी स्थापित है। इस करोटी की जड़ में दो हड्डियों की बाढ़ (Condyle) है, जो दो कटोरों के आकार मे, ग्रीवा-संबंधी कशेरु के ऊपर, आंशिक समभार, आंशिक बंधनी और आंशिक लगी हुई चमड़े की पेशियों द्वारा स्थापित है। यह करोटी मेरु-दंड के शीर्ष-स्थान मे स्थापित रहने पर भी, आवश्यकता के अनुसार, इधर से उधर और एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व को घुमाई जा सकती है। करोटी के

मुख्य दो अंश है—मस्तिष्क-आच्छादनी और मुख। पहला मेहराबदार एक अस्थि-कंदर है; उसमे मस्तिष्क के उदरस्थ और पश्चाद्भाग के अंश सुरक्षित और निरापद हैं। दूसरा अंश कुछ हलकी, शृंखला-हीन हड्डियों से बना है। इसमे नेत्र, नासिका और मुख के गह्वर है, और वाक्योच्चारणकारी तथा चबानेवाली पेशियाँ संयोजित है। सात ग्रीवा-संबंधी कशेरुओं मे कोई विशेष स्वत्व नही। बारह पृष्ठ-देशस्थ (dorsal) कशेरुओं मे एक-एक जोड़ी पंजर हैं। ये पंजर हलकी हड्डियों के बने और कशेरु के साथ संयोजित है। ये सब वक्षःस्थल के हरएक पार्श्व को वेष्टन कर उपास्थि के द्वारा उरोस्थि (sternum) मे आबद्ध है। प्रथम सातों पंजर इस प्रकार से अवस्थित है। परवर्ती तीन पंजर सम्मुखस्थ सातों पंजरों के उपास्थि मे आबद्ध है, उरोस्थि मे नही। शेषोक्त पंजर, जो भासमान पंजर (floating ribs) कहलाते है, बहुत ही छोटे और सामने बिलकुल आवद्ध नही है। इस प्रकार वक्षःस्थल पृष्ठ-देशस्थ कशेरुओं के द्वारा पीछे की तरफ दो पार्श्व के पंजरो और सामने चौड़े समतल उरोस्थि के द्वारा सीमाबद्ध है। इन हड्डियों का पश्चाद्भाग जब पेशियों द्वारा भर जाता है, तब उसके भीतर जीवनी-शक्ति का यंत्र हृदय और फुप्फुस अवस्थित रहता है। यदि ऊपर के अंशो की हम लोग आलोचना करे, तो यह देख पड़ेगा कि वक्षःस्थल का पश्चाद्भाग मेरु-दंड के हर तरफ एक चौड़ो, त्रिकोण हड्डी को स्कंधास्थि के

साथ वहन करता है। इस अस्थि के पीछे, पेशी की संयोजना के लिये, स्कंधास्थि का मेरु-दंड(spine of the scapula)-नामक एक मेढ़ और सामने coracoid process-नामक एक कठिन चंचु है। स्कंधास्थि (scapula), उरोस्थि (Sternum) से अक्षकास्थि(clavicle)-नामक कृश हड्डी के द्वारा संयोजित है। ऊपर के प्रत्यंग और देह के बीच में यही एकमात्र संयोजक है। स्कंधास्थि के अगंभीर पात्र मे प्रगंडास्थि (humerus), अर्थात् बाहु के उपरिस्थ हड्डी का बृहत् गोलाकारोमस्तक, शिथिल रूप से संयोजित है। इसका मस्तक, स्कंधास्थि पात्र के मस्तक से बड़ा होने के कारण, हाथ को इच्छा के अनुसार स्वाधीन भाव से घुमाया जा सकता है। प्रगंडास्थि का कांड लंबे स्तंभ के माफ़िक़ है, जो मस्तक से हड्डी के शेष प्रांत तक जाकर चौड़े, विश्रृंखल स्लेट के रूप मे परिणत हुआ है। इस स्लेट के बाहर और भीतर का किनारा तीक्ष्ण है। प्रगंडास्थि के उपरिस्थ प्रांत में Greater tuberosity नाम की एक बाहर निकली हुई हड्डी देख पड़ती है। उसमे स्कंधास्थि की कुछ पेशियाँ संयुक्त है। शेप प्रांत के कोने मे अग्रबाहु की कुछ पेशियाँ सन्निवेशित हैं। प्रगंडास्थि की निम्न सीमा में जो स्लेट अवस्थित है, उसमे एक बाहर निकली हुई हड्डी और एक गह्वर है। इनमे से प्रथम अस्थि अग्रबाहु के बाह्यास्थि के मस्तक के संधि-युक्त हुआ है, और शेषोक्त अस्थि अग्रबाहु के आभ्यंतरीण अस्थि के साथ सम्मिलित हुआ है। पहली हड्डी का नाम

रेडियस (radius) या बहिःप्रकोष्ठास्थि और दूसरी का अलना (ulna) या अंतःप्रकोष्ठास्थि है। रेडियस-हड्डी चौरस, ऊपर गोलाकार और नीचे चौड़ी है। इसका मस्तक, जो प्रगंडास्थि और अलना नाम की हड्डी के साथ संयुक्त हुआ है, अलना के निकटवर्ती स्थान के ऊपर स्वाधीन भाव से घूम-फिर सकता है। अलना का ऊपर का किनारा मोटा और भारी है। उसका तोते की चोंच की-जैसी आकृति होने के कारण वह प्रगंडास्थि को पकड़ रख सकती और उसके ऊपर हिल सकती है। इस प्रकार अग्रबाहु को उपरिस्थ बाहु के ऊपर इधर-उधर टेढ़ा किया जा सकता है। अलना का निचला भाग पतला और हलका है। रेडियस के नीचे के मोटे सिरे में लगे होने के कारण वह मेहराब के आकार मे मणिबंध-अस्थि (wrist bone) को धारण करता है। मणिबंध-अस्थियाँ संख्या मे आठ और न्यूनाधिक आकार मे चतुष्कोण हैं। वे सब अलना, रेडियस और करभास्थि के निम्नस्थ स्थान के बीच मे पाँच हैं। वे करतल के बीच मे रहकर उँगलियों को धारण करती है। हरएक उँगली मे तीन हड्डियाँ है। केवल अँगूठे मे दो हैं। प्रथम अस्थि-व्यूह-निचय उँगली की करभास्थि (metacarpal bone) के साथ संलग्न है। द्वितीय व्यूह प्रथम के साथ संयुक्त और तृतीय व्यूह द्वितीय व्यूह के साथ संश्लिष्ट है। करभास्थि तथा प्रथम और द्वितीय व्यूह-निचय लंबी हड्डी के आकार मे है। परंतु तृतीय व्यूह की अस्थियाँ

चाड़ी है, और उनका ऊपरी भाग गालाकार है। उसमे नाखून लगे हुए हैं। प्रत्येक व्यूह की अस्थि अपने सहचर के साथ स्वाधीन-गतिशील, कोणविशिष्ट संधि के द्वारा संयुक्त है।

ऊपर के अंग की हड्डियों के विषय मे मै आलोचना कर चुकी। अब मेरु-दंड के विपय मे लिखूँगी। पृष्ठ-देशस्थ कशेरु के नीचे पॉच वड़े कटिस्थ कशेरु (lumbar vertebıæ) है। हरएक अपने ऊपर के कशेरु से चौड़ा और मोटा है। उनके पंजर नहीं। चौड़ी पेशियों ने इन सब कशेरुओं के ऊपर स्थित वक्षःस्थल और वस्ति-गह्वर (Pelvıs) से फैलकर वक्षः-स्थल के ठीक नीचे एक प्रकोष्ठ को आच्छादित कर रक्खा है। इस प्रकोष्ठ को उदर-गह्वर (abdomınal cavıty) कहते है। इसमे पाकाशय, ऑते, यकृत, प्लीहा और मूत्र-ग्रंथि (kıdney) इत्यादि आवश्यक अंग रहते हैं। कटिस्थ कशेरु त्रिकास्थि के ऊपर अवस्थित है। इस त्रिकास्थि के नीचे क्षुद्र चंचु-अस्थि अवस्थित है। त्रिकास्थि के नीचे और दाएँ-बाएँ जघनास्थि (Ilıa) अवस्थित है। उसके नीचे वंकुकु दरास्थि (Ischıum) संलग्न है। विटप (pubes) नाम की दो छोटी, हलकी हड्डियॉ सम-कोण मे टेढ़ी होकर सामने जघनास्थि (Ilıa) और वंकुकुंद-रास्थि को संयोजित किए हुए है। इस प्रकार अस्थि का जो गोलाकार छिद्र हुआ है, वही वस्ति-गह्वर कहलाता है।

वस्ति-गह्वर के बाहर दोनो तरफ एक गहरा पात्र है। उसमे ऊर्वस्थि (Femur) का गोलाकार मस्तक संलग्न है। ऊर्ध्वास्थि

के मस्तक से एक गोलाकार अंश निकलकर हड्डी के एक कांड के साथ सम्मिलित हुआ है। इनके संगम-स्थान के ऊपरी सिरे मे एक बड़ी गाँठ है, जिसे बृहत् धावन-प्रवर्द्धन (Great trochanter) कहते है। इस बृहत् धावन-प्रवर्द्धन मे कुछ पेशियाँ वस्ति-कोटर की अस्थि से संलग्न हुई हैं। इसके नीचे के सिरे मे एक क्षुद्र धावन-प्रवर्द्धन (lesser trochanter) अवस्थित है। ऊर्ध्वास्थि का लंबा गोल कांड दो दृढ़ उँगलियों के नीचे आकर समाप्त हुआ है। ये दोनो उँगलियाँ बाहरी और भीतरी अस्थ्यग्र-प्रवर्द्धन (condyle) कहाती है। ये दीर्घास्थियों अर्थात् मनुष्य की जाँघों की दोनो हड्डियों के बीच बृहत्तर अस्थि के साथ संयुक्त है। जानु-संधि के सामने के ऊपर जान्वस्थि (Patella) अवस्थित है। यह हड्डी जानु के सामने के ऊपर की बड़ी पेशी के कंडरा (tendon) के भीतर निहित है। यह ऊर्ध्वास्थि के अस्थ्यग्र-प्रवर्द्धन के ऊपर चढ़कर कंडार को उत्तोलन-शक्ति प्रदान करती और संधि-स्थान को भी हानि से बचाती है। दीर्घास्थि के मनुष्य-जंघास्थि-द्वय के बीच मे बृहत्तर अस्थि का मस्तक, स्थूल ऊर्ध्वास्थि अस्थ्यग्र-प्रवर्द्धन को धारण करने के लिये, चौरस हो आया है। कांड का आकार त्रिकोण है। उसके सामने तीक्ष्ण दृढ़ मेढ़ है, जिसे जंघास्थि (shin) कहते है। संपूर्ण अंश मे कठिन और दृढ़ होने पर भी यह जंघास्थि कांड के नीचे के सिरे मे तंग हो गई है; परंतु भीतर आभ्यंतरीण गुल्फ (inner ankle)

एक छोटी हड्डी के अवलंबन से दृढ़ीभूत है। पैर का दूसरी हड्डी, जो नलकास्थि (fibula) कहलाती है, पतली है। यह दीर्घास्थि के साथ संयुक्त है। नलकास्थि का नीचे का सिरा चौड़ा होकर गाँठ-सा बन गया है। उसे बाह्य गुल्फ (outer ankle) कहते हैं। पैर की पाँच प्रपदास्थियों (metatarsal) में से हरएक उँगली के साथ संयुक्त है। वे हाथ की उँगलियों की तरह तीन व्यूहों में रचित हैं। केवल अँगूठे में दो अस्थि-व्यूह हैं। पैरों के अस्थि-व्यूह भी, हाथ की उँगलियों की तरह लंबी हड्डी से संगठित हैं। परंतु प्रांत के व्यूह, हाथ की उँगली की तरह, चौड़े हैं।

द्वितीय अध्याय

पेशी-मंडल

जीव-शरीर में पेशियाँ गति-शक्ति-विधायक यंत्र हैं। इनके आकार और संख्या से शरीर सुंदर और सुडौल होता है। ये हर अंग में, हड्डियों के चारों ओर, अवस्थित हैं। इनके द्वारा उन स्थानों की रक्षा होती है। किसी-किसी संधि-स्थान की प्रधान रूप से ये ही रक्षा करती हैं। देह में जहाँ छिद्र है, वहाँ उनमें व्याप्त पेशियाँ उन्हें ढके हुए हैं। दबाने से ये सब झुक जाती और छोड़ देने पर अपनी हालत में आ जाती हैं।

पेशियाँ मांस के सिवा और कोई पदार्थ नहीं। उनका रंग लाल और आकृति भिन्न-भिन्न होने के कारण वे भिन्न-भिन्न काम कर सकती हैं। वे समान तंतुओं से गठित हैं। वे पास-पास अवस्थित और कैशिक झिल्ली की बिनावट में एकत्र रक्षित हैं। यंत्र के छोर पर पैशिक तंतुओं का अंत हो गया है। कोषमय गठन बदलकर मांस-पेशियों की बंधनी के रूप में परिणत हो गया है। उसी से मांस-पेशियाँ हड्डी के ऊपर संलग्न है।

बंधनियाँ चौड़ी पेशी के बीच विस्तृत है। पैशिक तंतुओं के विन्यास ने बंधनी के संबंध में आकर विभिन्न रूप धारण

कर लिए है। कहीं-कही वे तंतु लंबे-लंबे, बंधनी मे घुसकर, प्रत्येक प्रांत में आकर समाप्त हुए है। किसी जगह वे पंखे की तरह केंद्र की ओर चले गए है, और कहीं पर पंख की तरह बंधनी के दोनो ओर अवस्थित हैं।

पेशियाॅ देखने में विभिन्न आकार के तंतुओं के पुलिंदे की आच्छादनी से बँधी हुई हैं। हरएक पुलिंदे मे छोटे-छोटे तंतु हैं। हरएक पेशी और बंधनी मे धमनी, शिरा, शोषक नाड़ी और स्पर्शानुभावक तथा परिचालक स्नायु है।

मनुष्य के शरीर मे चार सौ से भी अधिक पेशियाॅ है। सबके भिन्न-भिन्न नाम हैं। पर यहाँ उनके लिखने की आवश्यकता नहीं।

पेशी के तंतु संकुचन-क्रिया कराते है। उत्तेजक पदार्थ के स्पर्श से पेशियाॅ संकुचित होती और उत्तेजना मिट जाने पर शिथिल हो जाती है। जिन पेशियों की उत्तेजना से हाथ उठता है, उनमे अगर हम मानसिक बल का प्रयोग करे, तो हाथ उठता है। किंतु यदि मानसिक शक्ति को हटा ले, तो सुदृढ पेशी-समूह शिथिल हो जायगा। पेशी-निचय की संकुचन-शक्ति का अनुभव हम शरीर के हरएक काम मे कर सकते है। उदाहरण के तौर पर कुहनी की टेढ़ाई का उल्लेख किया जा सकता है। मांस-पेशियाॅ बंधनी के एक प्रांत मे स्कंधास्थि के साथ संलग्न होकर एक निर्दिष्ट स्थान पर क्रिया करती हैं। दूसरे प्रांत की मांस-पेशी-बंधनी हाथ के ऊपर की हड्डी के साथ

संलग्न है। जब मांस-पेशी का उदर संकुचित होता है, तब दोनो सिरे परस्पर एक दूसरे के पास आ जाते हैं। इसी से कुहनी का संधि-स्थान टेढ़ा होता है। इसी नियम से हरएक संधि-स्थान की गति नियमित होती है। जब मांस-पेशी का तंतु-निचय संकुचित होता है, तब संकुचित स्थान (उदर) कठिन हो जाता है। पेशियों की संकुचन-शक्ति से हम लोग भिन्न-भिन्न काम कर सकते हैं। इसी के कारण किसान खेती का काम करता है, लुहार हथौड़ी चलाता है, ग्रंथकार की लेखनी चलती है, शिकारी शिकार का पीछा करता है, बड़े-बड़े व्याख्यान दिए जाते हैं। हमारे खेल-कूद, नाच-तमाशे भी इसी शक्ति पर निर्भर हैं। केवल अंग चलाना ही पेशी के संकुचन पर निर्भर नहीं है, जीव-शक्ति की हरएक क्रिया भी उसी से संपादित होती है। हृत्पिंड का स्पंदन, रक्त-संचार, पाकाशय और आँतों की क्रिया, मानसिक क्रियाएँ इत्यादि सब कुछ पेशियों के संकुचन पर निर्भर है। मूर्च्छा की अवस्था मे हमको यह मालूम हो सकता है कि मन भी पेशी के अधीन है। उस समय चारो ओर क्या हो रहा है, इसका ज्ञान रहने पर भी मानव-जीवन का किसी प्रकार का चिह्न नहीं देख पड़ता।

जब जीवन के सुख, स्वास्थ्य, आनंद और काम-काज मे उल्लास के साथ पेशियों का इतना घनिष्ठ संबंध है, तब जिस नियम से वे नियमित होती है, उसका ज्ञान होना परम

आवश्यक है। साथ ही यह भी ज्ञान रहना चाहिए कि उनकी स्वस्थता और कार्यकारिता काहे पर निर्भर है।

स्वभाव का नियम यह है कि कोई पेशी जब बार-बार क्रिया करती है, तब उसका तंतु मोटा और सुदृढ़ होता है; तभी वह अधिक विक्रम के साथ काम कर सकती है। यदि पेशियाँ इसके विपरीत क्रिया करें, तो उनका आकार और शक्ति भी घट जायगी। अतएव स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य का पहनावा अगर किसी तरह वक्षःस्थल की पेशी और मेरु-दंड की अप्रतिहत गति को रोके, तो पेशियाँ दुर्बल हो जायँगी। इससे फुप्फुस की यथेष्ट विस्तृति में ही केवल बाधा न पड़ेगी, बल्कि जो पेशी मेरु-दंड को धारण करती है, वह भी दुर्बल होकर शरीर को टेढ़ा और रोगों का घर बना देगी।

क्रिया के द्वारा पेशी के परिवर्तन का कारण यह है कि धमनी का रक्त शरीर के हरएक यंत्र में क्रिया के अनुसार संचित होता है। इसके विपरीत जब किसी यंत्र में पुष्टिकारी रक्त नहीं भरता, तब वह दुर्बल हो जाता है। फिर क्रमशः क्रिया-शक्ति से शून्य हो जाता है। एक हाथ से काम करो, और दूसरे को बाँध रक्खो। कुछ दिन में एक हाथ बड़ा, सुदृढ़ और दूसरा छोटा और कोमल देख पड़ेगा। एक की रक्तवाहिनी नाड़ी की क्रिया प्रबल और दूसरे की दुर्बल हो जायगी।

अतएव जब शक्तिहीनता, मंदाग्नि और अप्रफुल्लता मालूम

हो, तब इस नियम में व्यतिक्रम समझ लेना चाहिए। औषध सेवन करने से पहले हड्डियों और पेशियों के प्राकृतिक नियम से असावधान न होना उचित है। जिस व्यायाम से मांस-पेशियाँ अधिकतर क्रियाशील हों, वही उत्तम है।

बालक किस प्रकार खड़ा होता है, इसके प्रति मा-बाप और शिक्षक की विशेष दृष्टि रहनी चाहिए। यदि युवावस्था में बालक झुकना सीखें, तो बुढ़ापे में वे निश्चय ही झुक जायँगे। पीठ की पेशियों का जिस प्रकार से नियमित व्यायाम होता है, वह अवश्य करना चाहिए; क्योंकि उनके नियमित विस्तृत होने से बालक सीधे खड़े हो सकेंगे। इस प्रकार उन लोगों के कंधे भर जायँगे, और छाती चौड़ी होगी। इसके विपरीत अगर बालकों को सिर और कंधे झुकाए रहने का अभ्यास कराया जाय, तो छाती छोटी और पीठ की पेशियाँ दुर्बल हो जायँगी। इस प्रकार उत्पन्न होनेवाली विरूपता अवस्था बढ़ने के साथ ही वृद्धि को प्राप्त होती जाती है।

बालकों को सीधे होकर बैठने की शिक्षा देनी चाहिए; क्योंकि उनका स्वस्थ या अस्वस्थ रहना उनकी बैठक पर निर्भर है। पढ़ने या काम करने के समय उनको सीधे होकर बैठना चाहिए; क्योंकि इससे शरीर के भिन्न-भिन्न यंत्र अपना-अपना काम ठीक करेंगे। इस प्रकार उनका स्वास्थ्य बढ़ेगा, और शरीर भी देखने में सुंदर और सुगठित जान पड़ेगा।

बालक जब बेंच पर बैठें, तब ऐसा बंदोबस्त होना चाहिए

कि वे पीछे पीठ लगाकर बैठे। पर बालकों का स्वभाव यह होता है कि वे आगे की ओर झुककर बैठने की ही चेष्टा करते है। वे अपनी कुहनी डेस्क पर रख लेते है। जब बालकों के पीठ लगाकर बैठने का प्रबंध नहीं होता, तभी ऐसा होता है। अतएव मेरु-दंड के झुक जाने की हालत मे सबसे अधिक विरूपता होने का खटका है। यदि कोई बालक या बालिका सीधी होकर खड़ी न हो सके, तो उसे खड़ा रक्खो, या किसी चीज मे पीठ लगाकर बैठने दो। लेकिन कुहनी टेककर सामने की ओर झुकने न दो।

केवल स्कूलों की बेचों मे ही ऐसा प्रबंध न रहना चाहिए। उनका डेस्क या टेबिल इतना ऊँचा होना चाहिए कि उन्हे किताब देखने के लिये सामने न झुकना पड़े।

पेशी-मडल का स्वाभाविक नियम यह है कि व्यायाम के बाद विश्राम की आवश्यकता होती है। विश्राम की क्यों आवश्यकता होती है, यह बात किसी सभा मे जाने से मालूम हो सकती है। वक्ता की वक्तृता सुनने के लिये श्रोतागण उद्ग्रीव होते है। उस समय उनकी पेशियाँ काम करने लगती हैं, और थोड़े समय के बाद ही श्रोताओं मे एक प्रकार की अस्थिरता आ जाती है। असल बात यह है कि अधिक देर तक मेरु-दंड उन्नत किए रहने से पेशियों मे क्लांति और चंचलता आ जाती है। अधिक देर तक क्रिया करते रहने से पेशियाँ दुर्बल हो जाती हैं, और क्रमशः उनकी संकुचन-शक्ति

लुप्त हो जाती है। स्कूल मे छोटे-छोटे लड़के थोड़ी देर बैठने से चंचल हो उठते है। इससे समझा जा सकता है कि उन लोगों को कुछ परिवर्तन की ज़रूरत है। यह परिवर्तन होने से उनकी अपुष्ट पेशियाँ सबल हो जाती है, और वे मेरु-दंड को फिर ऊँचा रख सकते है। बालकों को बहुत देर तक सीधा बैठाए रखना बहुत बुरा है; क्योंकि यह बैठक पेशियों के नियम के विरुद्ध है। इससे मेरु-दंड टेढ़ा पड़ जाता है।

स्कूलों मे जो टिफिन की छुट्टी होती है, वह पेशियों की क्रिया से संबंध रखनेवाले नियम के ऊपर प्रतिष्ठित है। पैशिक उत्तेजना के बाद विश्राम की ज़रूरत होती है; इसीलिये बालकों को टिफिन की छुट्टी होती है। बालक जितना ही छोटा और दुर्बल होगा, उतना ही उसे विश्राम आवश्यक होगा। पेशी के फैलने और सिकुड़ने का अनिवार्य फल क्लांति है। इस कारण कार्य और बैठने का ढंग बदलने से थकी हुई पेशियाँ विश्राम पाती और नई पेशियाँ काम मे लग जाती है। कहना यह है कि परिश्रम का परिवर्तन विश्राम की तरह हितकारी है। यह नियम बहुदर्शिता से स्थापित हुआ है। मै पहले कह चुकी हूँ कि पेशियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की है। वे स्थान-विशेष की अवस्थिति और शक्ति के अनुसार काम करती है। पेशियाँ संचालन-क्रिया के लिये होने पर भी वे स्वयं संचलित नहीं हो सकती। वे ऐच्छिक और अनैच्छिक नाड़ी-मंडल के द्वारा परिचालित होकर कार्य मे प्रवृत्त होता है। सफेद सूत के

समान इस नाड़ी-मंडली ने मस्तिष्क की भित्ति और मेरु-दंड से निकलकर पेशियों के साथ मस्तिष्क का संबंध स्थापित कर रक्खा है। अनैच्छिक शक्ति-संपन्न नाड़ी-मंडली परिपाक, रक्त-संचरण और श्वास-प्रश्वास-संबंधी पेशियों को, जिनका इच्छा-शक्ति के साथ कुछ संबंध नहीं है, उत्तेजित करती है। ये क्रियाएँ हम लोगों के जीवन के प्रथम श्वास से अंतिम श्वास तक होती है। हम लोग चाहे जागते रहे और चाहे सो जायँ, जान सके या न जान सकें, क्रियाएँ निश्चय ही होंगी। इच्छा-शक्ति उनको बाधा नही पहुँचा सकती।

ऐच्छिक क्रिया-संबंधी नाड़ी-मंडली मस्तिष्क से निकली है, और वह इच्छा के अधीन है। नाड़ियाँ इच्छा के विचार को पेशियों के पास ले आती हैं, इसलिये उनका समूह संवाद-यंत्र के सिवा और कुछ नहीं। मन के किसी काम की इच्छा करने पर ऐच्छिक नाड़ियाँ मस्तिष्क से शक्ति लेती और बिजली की तरह उपयुक्त पेशियों को संवाद देती है। पेशियाँ भी संकुचित होकर उस समय काम करने लगती है। इस प्रकार जब हम लोग कुछ कहने की इच्छा करते है, जब मस्तिष्क ऐच्छिक नाड़ी-मंडली की सहायता से जिह्वा, कंठ और होठों की पेशियों से शक्ति भेजता है, तब वे पेशियाँ संकुचित होकर आवश्यक शब्द उत्पन्न करती है।

मस्तिष्क, मेरु-दंड और नाड़ियों का स्वास्थ्य, तत्परता, आकार और गुण पैशिक क्रिया मे परिवर्तन ले आता है।

मस्तिष्क यदि स्वस्थ रहे, तो उसकी रुग्णावस्था में पेशी-निचय की क्रिया अधिक होगी। यह बात हम लोग टाइफस (मोहक) ज्वर, मस्तिष्क-दाह, संन्यास-रोग और मद्य-पान की दशा में देख पाते हैं। मस्तिष्क के निष्क्रिय होने से पेशियों की क्रिया भी रुक जाती है। इससे समझा जा सकता है कि नाड़ी-मंडली का पेशियों के ऊपर कैसा आधिपत्य है। जिन नाड़ियों के साथ पेशियों का संबंध है, उनका यदि ध्वंस हो जाय, तो उनकी संकुचन-शक्ति और चैतन्य-शक्ति लुप्त हो जायगी। किसी जगह नाड़ी यदि दबाई जाय, तो उसकी क्रिया और अनुभव की शक्ति भी घट जाती है। कठिन बेंच के ऊपर अधिक देर तक बैठने से यह बात अच्छी तरह समझ में आ सकती है इस तरह बैठने से यह देख पड़ता है कि नाड़ियों के दब जाने से नीचे के अंग का अनुभव जाता रहता और उसकी क्रिया-शक्ति भी घट जाती है। कटि-नाड़ी को, जो पैर तक फैली है, दबाने पर भी इसी प्रकार का फल होता है।

साधारणतः एक ही आकृति के व्यक्तियों में भी पैशिक शक्ति और तत्परता का प्रभेद देख पड़ता है। यह बात पैशिक तंतुओं के आकार, बनावट, घनता और मस्तिष्क तथा नाड़ियों की कार्यकारिता पर निर्भर है। घुड़दौड़ में जो घोड़े दौड़ते हैं, उनकी पेशियों की घनता और बुनावट के साथ अगर लद्दू घोड़ों का मिलान किया जाय, तो दोनों में बड़ा अंतर देख पड़ेगा। इसलिये पतली घनी बुनी हुई पेशियों से युक्त, तत्पर

मस्तिष्क और नाड़ीवाले आदमी जैसा स्फूर्ति और शक्ति का काम कर सकेंगे, वैसा मोटी और ढीली पेशियोंवाले आदमी, एक ही आकार के होने पर भी, नहीं कर सकते। आदमी की अगर छोटी पेशी और बड़ी-बड़ी कर्मठ नाड़ी हों, तो वह भारी शक्ति दिखला सकेगा। परंतु यदि मस्तिष्क रुग्ण रहे, तो अधिक देर तक शक्ति नहीं रहेगी। गुल्म-वायुरोग (हिस्टिरिया) इसका उत्कृष्ट उदाहरण है कि किसी की पेशियाँ यदि चौड़ी और नाड़ी छोटी हों, तो वह अधिक शक्ति का काम न कर सकेगा, या ऐसे काम में अधिक तत्परता नहीं दिखा सकेगा। परंतु, सहनशीलता अधिक होने के कारण, वह अधिक समय तक परिश्रम कर सकेगा। इससे स्पष्ट समझ सकते हैं कि केवल गठन देखकर आदमी की काम करने की शक्ति का अनुमान हम नहीं कर सकते। सूक्ष्म, घनी, पूर्ण और विकसित पेशियाँ, विशाल नाड़ी-मंडल और स्वस्थ तत्पर मस्तिष्क होना ही शक्ति, तत्परता और सहनशीलता का कारण है।

यदि शरीर का पूर्ण विकास चाहते हो, तो बालकों के ऊपर के अंग पर विशेष दृष्टि रक्खो। सबको मालूम है कि जिनका ऊपर का अंग सीधा होता है, वे अधिक देर तक खड़े हो सकते, अधिक घूम सकते और अधिक परिश्रम कर सकते हैं। परंतु जिनका ऊपर का आधा हिस्सा झुक जाता है, वे ऐसा नहीं कर सकते।

यह तत्त्व पेशिक नियम के अनुकूल और दो कारणों से उत्पन्न है। एक तो, पेशी को संकुचित अवस्था में रखना हो, तो उसमे मस्तिष्क से शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। पेशी जितना ही कम संकुचित रहेगी, उतना ही नाड़ी-मंडली की शक्ति कम खर्च होगी, और उतना ही कम क्लांति का अनुभव होगा। शरीर का उत्तरार्द्ध यदि ऊँचा रहे, तो शरीर और मस्तक मेरु-दंड की अस्थि और उपास्थियों के ऊपर समता रख सकता है।

शरीर के सामने कुछ झुक जाने से मेरु-दंड के पीछे जो पेशियाँ लगी हुई हैं, वे धीरे-धीरे संकुचित होकर शरीर को खड़ा रक्खेंगी, और पश्चाद्भाग को टेढ़ा कर देंगी। परंतु मेरु-दंड की सामने की पेशियाँ यदि आकुंचित हों, तो वैसा नहीं होने पाता। बस, खड़े शरीर में वह पीछे और आगे केवल थोड़ा हिल सकता है। यह सच है कि टेढ़ी अवस्था मे, संकुचित रहने पर, मेरु-दंड के पीछे की पेशियाँ शरीर को सामने गिरने नहीं देतीं, परंतु वे पीठ की पेशियों और वात-शक्ति को हीन कर देती है। किंतु खड़े रहने से ऐसा नहीं होता; क्योंकि सामने और पीछे कुछ हिलने से क्रमश. संकुचन और शिथिलता उपस्थित होती और उससे स्वास्थ्य ठीक रहता है।

जब पेशी का कोई अंश काम करने लगता है—जैसे घूमने के समय पैर की और अन्यान्य पेशियाँ अधिकतर विश्राम करती हैं—तब नाड़ी-मंडली की शक्ति कार्य-स्थान मे दौड़ जाती है। फल यह होता है कि पेशियों मे जल्दी थकन नही आती।

तृतीय अध्याय

रक्त-संचार

हृदय, धमनी, शिरा और कैशिका-नाड़ियों से रक्त शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में आता-जाता है।

वक्षःस्थल के बाईं तरफ के गढ़े मे हृदय तिर्छा अवस्थित है। इसका मूल-देश पश्चाद्भाग मे दक्षिण कंधे की तरफ है और अगला भाग बाईं तरफ के सामने, उरोस्थि से तीन इंच की दूरी पर, पाँचवे और छठे पंजर के बीच मे है। इनका निचला हिस्सा वक्ष-उदरमध्यस्थ पेशी (diaphragm) के कंडरा (tendon) के ऊपर अवस्थित है। यह एक कोष से घिरा है। यह कोष pericardium कहलाता है। झिल्ली के भीतर से रस झरकर हृत्पिंड को चिकना करता है। इससे उसका हृद्देश (pericardium) के साथ संघर्ष नहीं होता। स्वस्थावस्था मे छोटे चम्मच के लगभग रस झरता है। रोग की अवस्था मे कभी-कभी एक औंस के लगभग रस झर जाता है। उससे हृत्पिंड का धड़कन बढ़ जाती है।

हृदय की तौल आठ औंस से दस औंस तक होती है। यह पैशिक तंतुओं से गठित है। तंतु भिन्न-भिन्न ओर चले गए हैं। कोई-कोई तंतु लंबा है। किंतु अधिकतर पेंच की तरह

अँगरेजी में इसको Aorta कहते हैं। यह हृदय में लटका रहता है। धमनी-संबंधी व्यापार में इसे प्रधान रास्ता समझना चाहिए। धमनी-संबंधी रुधिर इसके द्वारा जाकर सारे शरीर में व्याप्त होता है।

हृदय के क्षेपक कोष्ठों का स्थान प्रायः समान है। तथापि बाईं ओर के परदे दक्खिन ओर के परदों से मोटे हैं। उनकी संकुचन-शक्ति में भी अंतर है। दक्खिन ओर का पतला परदा स्वस्थावस्था में कोमल और नमनीय फुफ्फुस में रक्त संचालित करने की सामर्थ्य रखता है। बाईं ओर का परदा, अधिक मोटा होने के कारण, शरीर के अपेक्षाकृत घने स्थान में रक्त भेजने की शक्ति रखता है।

हृदय में धमनियाँ और शिराएँ हैं। वे पेशिक तंतुओं में जाकर सम्मिलित हुई हैं। उक्त धमनियों में शिराओं से रुधिर आता-जाता है। इसमें थोड़ी शोषक नाड़ी और बहुत स्पंदजनन नाड़ी-सूत्र (filament) हैं।

धमनियाँ स्थिति-स्थापक और स्तंभ-सदृश नल-जैसी हैं। ये हृदय से रक्त लेकर शरीर के सब स्थानों में पहुँचाती हैं। ये सब पास-पास घनी हैं। रक्त-हीन होने पर ये स्तंभ का-जैसा आकार धारण कर लेती और मृत्यु के बाद इसी अवस्था में रहती है। पूर्वकाल में लोग इन्हे वायु की नली समझते थे। उन लोगों को विश्वास था कि इन नलियों से शरीर में प्राण-वायु परिव्याप्त होता है। इसीलिये वे लोग इन्हे वा-

नली समझते और कहते थे। इनके तीन आच्छादनी होती है। बाहर की दो आच्छादनी कठिन और दृढ़ है। बीच की आच्छादनी पीले तंतुओं से गठित है। यह आच्छादनी स्थिति-स्थापक, भंगुर और बाहरी आच्छादनी से मोटी है। यह, स्थिति-स्थापक होने के कारण, नल-रक्त को धारण कर सकती है। भीतर की आच्छादनी पतली और रुधिर-जल-स्राविनी झिल्ली के समान हैं। यह झिल्ली धमनी के भीतर देख पड़ती है, और इसलिये इसका बाहरी अंश चिकना है। यह हृदय का आवरण झिल्ली सर्वत्र व्याप्त है।

धमनियाँ शिराओं मे जाकर समाप्त नही हुई हैं। वे नलमय देह मे जाकर समाप्त हुई हैं। यह नलमय शरीर, अत्यंत छोटा होने के कारण, कैशिका (Capillaries) कहलाता है। धमनी के बीच मे जो सड़के है, वे संख्या मे अनेक और खुली हुई हैं। शाखाओं का आकार जब घट जाता है, तब वे बढ़ जाती है। वे शिथिल कोषमय ढकनी से आवृत है। यह आच्छादनी उन्हे चारो ओर की झिल्ली से अलग रखती है। आच्छादनी मे भी शिरा और कही-कही नाड़ी है। धमनी की आच्छादनी मे भी, शिराओं के अन्यान्य अंग-प्रत्यंगों की तरह, रुधिर-संचार होता है, और उसमें नाड़ियाँ भी रहती हैं।

दक्षिण क्षेपक कोष्ठ की जड़ मे फुप्फुस की धमनी का प्रारंभ है। यह बृहद्धमनी के मेहराब के नीचे टेढ़ी होकर दो

शाखाओं मे बँट गई है। एक शाखा दक्षिण फुफ्फुस मे और दूसरी बाएँ फुफ्फुस मे चली गई है। ये दोनो शाखाएँ भी फुफ्फुस मे जाकर शाखा-प्रशाखाओं मे बँट गई है। यह फुफ्फुस की धमनी फुफ्फुस मे मैला रक्त ले जाती है। हृदय के बाएँ क्षेपक कोष्ठ शुद्ध से रुधिर बहता है। इस कोटर से बृहद्धमनी (Aorta) की उत्पत्ति है। उसकी शाखा-प्रशाखाएँ सारे शरीर में परिव्याप्त है। बृहद्धमनी पहले दाहनी ओर उठकर फिर बाईं ओर टेढ़ी हो गई है, और हृदय के पीछे, मेरु-दंड के बाई ओर, उतर गई है। इस बृहद्धमनी के आरोहणी और अवरोहणी नाम के दो विभाग हैं। वक्षःस्थल के कोटर मे यह धमनी वक्षःस्थल की धमनी (thoracic aorta) और उदर मे उदर-धमनी कहलाती है।

मस्तिष्क मे रुधिर चार द्वारों से प्रवेश करता है। सामने के दोनो द्वारों का नाम दक्षिण-नीला-धमनी और वाम-नीला-धमनी है, जिन्हें अँगरेज़ी मे carotid, arteries कहते है। मस्तक के पीछे के दो द्वारों का नाम दक्षिण और वाम काशेरुकी धमनी (vertebral arteries) है। मस्तिष्क के कोमल स्थान मे सहसा और जोर से रुधिर न प्रवेश कर सके, इसके लिये यहाँ जो कौशल देख पड़ता है, उसे देखकर आश्चर्य का ठिकाना नही रहता। करोटी के बीच मे घुसने के पहले धमनियों को बड़ी और घूमी हुई राह से अनेक बाधाओं का सामना करके जाना पड़ता है। इसी से रुधिर की गति का

जोर घट जाता है। चारो भिन्न-भिन्न धमनियों से होकर, करोटी मे घुसने के बाद, रुधिर मस्तिष्क के नीचे जमा होता है। उसके बाद वह मस्तिष्क मे प्रवेश करता है।

पाकस्थली मे रक्त केवल मुकुट-धमनी होकर ही नही प्रवेश करता, प्लीहा और यकृत् से जो धमनी पाकाशय मे गई हैं, उनसे भी वह पाकस्थली मे जाता है। इन धमनियों की विशेषता यह है कि अलग-अलग तीन जगह से उठने पर भी एक ही जगह मिल गई है। आँतों के विभिन्न स्थानों मे जो धमनियाँ गई हैं, उनका भी तदनुरूप प्रबंध है। धमनी से जिस प्रकार मस्तिष्क मे रक्त जाता है, उसी प्रकार का यहाँ भी प्रबंध है। देह की पुष्टि, पाकस्थली की अप्रतिहत क्रिया, पेशियों की विविध क्रियाएँ और मस्तिष्क की चेष्टा, ये सब काम रक्त-संचार के ऊपर निर्भर हैं। यदि कोई धमनी दब जाय, या रोग से ध्वंस हो जाय, तो भी, धमनियों के एकत्र रहने का प्रबंध रहने के कारण, उनमे रुधिर-संचार हो सकता है। यदि किसी बृह-द्धमनी को बाँधकर, अथवा अन्य किसी प्रकार से, उसमे रुधिर न घुसने दिया जाय, तो छोटी-छोटी सम्मिलित धमनियाँ जो विशेष कार्य करती है, वह अधिक हो जाती है, और उस स्थान की पुष्टि को घटने नही देती।

शरीर के विभिन्न व्यूह-तंतुओं (tissue) मे धमनियों के द्वारा रुधिर घुसने के बाद शिराएँ रुधिर को हृदय में भेज देती हैं। शिराएं आकार मे धमनियों से छोटी है। वे रक्त-संचार-

हीन होने से समतल होकर ध्वंस हो जाती हैं। दैहिक रक्त-संचरण-प्रणाली में शिराएँ काले-काले, गाढ़े रक्त को हृदय के दक्षिण ग्राहक कोष्ठ में ले जाती है। मृत्यु के बाद वे रुधिर से थोड़ी-बहुत फूली हुई देख पड़ती है। फुप्फुस की रक्त-संचरण-प्रणाली मे शिराएँ दैहिक रक्त-संचरण-प्रणाली की धमनियों के समान है। जीवितावस्था में वे विशुद्ध रुधिर को फुप्फुस की कैशिकाओं से दक्षिण ग्राहक कोष्ठ में भेजती हैं।

शिराएँ कैशिका-नाड़ी मे छोटे-छोटे बीजों के अंकुरों के समान शुरू होती है। वे शरीर में सब जगह फैली हुई है। वे क्रमशः शाखा-प्रशाखाओं मे फैलकर, कांड के रूप में परिणत होकर, शिराओं के रक्त को हृदय मे पहुँचाती है। इनका घेरा धमनी से बहुत बड़ा है। शिराओं के बीच मे जो मार्ग हैं, वे धमनी के मार्गों से अधिक बड़े और छोटे नल के भीतर हैं। यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि वे क्यों एकत्र हैं। उनका आवरण पतला होने के कारण उनको बहुत-सी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। अतएव वे सम्मिलित न होते, तो काम न चलता।

धमनी की तरह शिराओं की भी पुष्ट नलियाँ है। यह भी जाना जाता है कि स्पंद-जनन नाड़ी-सूत्र ganglionic से उनकी आच्छादनी मे फैला हुआ है।

शिराओं की तीन आच्छादनी हैं—बाह्यिक, मध्यस्थ और

आंतरिक। वाह्यिक आच्छादनी घनी और दृढ़ तथा देखने में धमनी के कोपमय कुर्ते के समान है। मध्यस्थ आच्छादनी धमनी की तरह तंतु-जैसी और बहुत ही पतली है। आंतरिक आच्छादनी धमनी की तरह रक्तांबुस्राविनी है। ये सब एक ओर हृदय की झिल्ली की आच्छादनी के साथ और दूसरी ओर कैशिका-नाड़ी की झिल्ली की आच्छादनी के साथ सन्निविष्ट हैं। आंतरिक आच्छादनी मे, बीच बीच मे, तहे देख पड़ती हैं। ये तहे द्वार है। नली के दोनो ओर दो-दो तहे रहती है। द्वार की तह हरएक तह का खुला हुआ सिरा पोला और सामने ही अवस्थित रहता है; क्योंकि रुधिर-प्रवाह के हृदय की ओर दौड़ने पर वे किसी तरह उसकी गति मे रुकावट नहीं डालतीं। किंतु यदि किसी प्रकार उस गति मे किसी तरह का विपरीत भाव उपस्थित हो, तो वे फूलकर रक्त की गति मे रुकावट डालती हैं। हाथ और पैर की शिराओं मे द्वार अधिकतर देख पड़ते है। खासकर गहरी शिराएँ पेशी के बीच मे अवस्थित है। किसी-किसी छोटी शिरा मे कोई द्वार नहीं।

कैशिका-नाड़ी शरीर मे सर्वत्र फैली हुई है। वे बहुत ही सूक्ष्म और केवल अणुवीक्षण-यंत्र से देख पड़ती है। यदि चमड़े मे सुई चुभोई जाय, तो वह उनमे से कुछ को आघात पहुँचाए बिना भीतर नहीं घुस सकती। कैशिका-नाड़ी के द्वारा शरीर मे पुष्टि और क्षरण-क्रिया का संपादन होता है। सबका

व्यास समान है। वे धमनी के प्रांत और शिरा के आरंभ में सम्मिलित हुई हैं। रुधिर के पुष्टिकारक पदार्थों से हड्डी, पेशी इत्यादि बनाने की क्रिया कैशिका-नाड़ी में होती है। कैशिका-नाड़ी जिन पदार्थों को जमा करती है, उनको अगर संपूर्ण रूप से शोषक नाड़ी निकाल न सके, तो मनुष्य मोटा हो जाता है।

हृदय में स्थित कोटर के परदे पैशिक तंतुओं से गठित हैं। वे शरीर के अन्यान्य स्थानों के पेशी-मंडल की तरह संकुचित और शिथिल हो सकते हैं। हृदय की पेशियों का संकुचन और शिथिलता ग्राहक कोष्ठ और क्षेपक कोष्ठ के गह्वरों को घटाती-बढ़ाती है। यह हृदय के हरएक स्पंदन में होता है।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि धमनी, शिरा और कैशिका-नाड़ी से हृदय में और वहाँ से अन्यत्र रुधिर बहता है। रक्त के यथोचित रूप से सर्वत्र पहुँचने के लिये इनकी विशेष आवश्यकता है। हृदय के पैशिक परदे का संकुचन होने पर रुधिर पहले हृदय से बहकर धमनी में जाता है। हृदय के संकुचन की शक्ति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की है। स्वास्थ्य और शरीर की अवस्थाएँ उक्त संकुचन में अंतर ले आती है। हृदय की पेशी की शक्ति कैसी और कितनी है, इसका अनुमान करना कठिन है। परंतु अन्यान्य पेशियों और कटी हुई धमनी से जो जोर से रक्तस्राव होता है, उसको देखकर यह

अनुमान होता है कि हृदय की पेशी की शक्ति बहुत ही अधिक है। दूसरे, धमनी की लोचदार, स्थिति-स्थापक आच्छादनी रुधिर को शरीर की छोटी-छोटी नलियों मे भेजने के काम मे हृदय को विशेष सहायता करती है। तीसरे, छोटी-छोटी केशिका-नाड़ियों की क्रियाओं को शरीर-तत्त्व के विद्वान् धमनी के रक्त-संचार का संचालक समझते है।

शैरिक आच्छादनी के संकुचन और हृदय, धमनी तथा केशिका-नाड़ी की स्पंदन-शक्ति के प्रभाव से रुधिर शिरा के भीतर होकर हृदय मे लौट आता है। इसके शक्ति-हीन होने के कारण रुधिर तुरंत रुक जाता है। अन्यान्य आनुषंगिक कारण भी शैरिक सचरण के ऊपर प्रभाव डालते है। उनमे हृदय की शोषण-शक्ति भी एक है। इससे हृत्पिड मे रुधिर खिचता है। शरीर-तत्त्व के जाननेवाले लोग श्वास लेने को दूसरा कारण बतलाते हैं। इससे शिरा का रक्त वक्षःस्थल के गह्वर में आकर्षित होता है। किंतु इनमे प्रबल कारण, जो शैरिक संचरण के ऊपर प्रभाव डालता है, शैरिक शरीर के ऊपर पेशी की वारंवार होनेवाली क्रिया है। पेशियों के संकुचित होने पर उनके भीतर की शिराएँ दब जाती हैं, और उसके द्वारा रुधिर एक द्वार से दूसरे द्वार मे हृत्पिंड की ओर खिच आता है। जब पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं, तब शिराएँ फिर भर जाती है, और पेशी का हृदय वारंवार की क्रिया से दब जाता है।

हृदय जिस प्रबलता से शैरिक संचरण करता है, उससे

भी अधिक प्रबलता से पेशियाँ शैरिक संचरण करती हैं। विश्राम से जितना स्पंदन घट जाता है, उतना ही कसरत से बढ़ जाता है। और, अधिकतर अंग-संचालन से स्पंदन की गति कहीं अधिक बढ़ जाती है। इसमे कोई संदेह नहीं कि व्यायाम के समय हृदय की द्रुत गति ही शरीर के भीतर होकर रुधिर के शीघ्र लौट आने का यथेष्ट कारण है। विश्राम के उपरांत हम लोगों की पेशियाँ अधिक सख्या मे सहसा क्रिया करती हैं। जैसे बैठे-बैठे सहसा खड़े हो जाने पर हृदय मे बहुत ही ज़ोर से रुधिर जाता है। हृदय यदि रुग्ण रहे, तो अधिक मात्रा मे रुधिर का भीतर आना मृत्यु का कारण होता है। इस कारण जिन लोगो का हृदय दूषित है, उन्हे सहसा या बहुत अधिक व्यायाम न करना चाहिए।

रक्त दो वस्तुओं से बनता है। जलीय अंश (serum) और कठिन अंश (coagulum) से। कठिन श्वेत पदार्थ है, जो ऊपर संचित होता है। लोहे के रहने से रुधिर का लाल रंग होता है।

साधारणतः हरएक तीन मिनट मे रुधिर सर्वत्र घूम आता है। जवानों के मिनट मे ७५ बार, बच्चों के १४० बार और बुड्ढों के ६० बार हृदय मे स्पंदन होता है। शरीर के पूरे वज़न का २ˈ० भाग रुधिर ही है। हृत्कोटर के हरएक संकुचन मे दो औंस के लगभग ख़ून बहता है। इस हिसाब से तीन मिनट मे ३५ पौंड, हर घंटे मे ७०० पौंड और हर चौबीस

घंटे मे १६,००० पौंड या आठ टन खून हृदय से होकर जाता है।

यदि शरीर का कोई अंश रक्त-हीन हो जाय, तो उसकी जीवनी-शक्ति लुप्त हो जाती है। परंतु यदि रुधिर परिमाण में घट जाय, तो केवल स्वास्थ्य और बल घटता है। और, यदि रुधिर के उपादान मे परिवर्तन हो जाय, अर्थात् रक्त दूषित हो जाय, तो शरीर के भिन्न-भिन्न यंत्रों की क्रियाएं विशृंखल होकर अनेक तीव्र रोग उत्पन्न कर देती है।

क्या करने से शरीर मे सब जगह ठीक-ठीक रक्त-संचार हो सकता है, इस विषय मे कुछ नियम यहाँ लिखे जाते हैं—

(१) शरीर के सब स्थानों का कपड़ा ढीला रहना चाहिए। कसकर वस्त्र पहनने से, दबाव पड़ने के कारण, रुधिर के आने-जाने मे रुकावट पड़ती है। हृदय के विषय मे तो यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिए ; क्योंकि उसी के गह्वर मे फुप्फुस, हृत्पिंड, बृहद्धमनी और शिराएँ है। जो रुधिर मस्तिष्क मे आता और वहाँ से बाहर निकलता है, वह गर्दन से होकर आता-जाता है। गर्दन के ऊपर का वस्त्र यदि कसा हो, तो रक्त-संचरण मे रुकावट पड़ती है, और मस्तिष्क की क्रियाएँ भी ढीली पड़ जाती है। छात्र, वक्ता, मृगी-रोग-ग्रस्त और मस्तिष्क-रोग-ग्रस्त को यह बात विशेष रूप से स्मरण रखनी चाहिए।

चमड़े के ठीक नीचे अनेक बड़ी-बड़ी शिराएँ रहने के

कारण रुधिर नीचे से लौट आता है। अगर मोज़ों को ऊँचा रखने के लिये गेटिस और कमर में कमरबंद कसकर बांधा जाय, और वह स्थिति-स्थापक न हो, तो रुधिर के जाने में रुकावट पड़ने से वृहत् शिरा को फुला देता है। इसलिये हर-एक बंधन का ढीला रहना बहुत जरूरी है।

(२) शरीर में सब जगह एक-से ताप की आवश्यकता है; क्योंकि शरीर के किसी अंग में ठंडक लगने पर उस जगह की रक्तवाहिनी नाड़ियां आकार में छोटी हो जाती हैं, और जो रुधिर उस ठंडे अंग को फुलाता, वह दूसरे अंग में संचित होता है। ठंडे अंग में रुधिर न रहने के कारण वह दुर्बल हो जायगा, और दूसरे अंग में रुधिर अधिक होने के कारण रोग उत्पन्न हो जायँगे।

केवल चमड़े को ही एक-सा गरम न रखना चाहिए। अंगों को कपड़े की गरमाहट से इस तरह गरम रखना चाहिए कि ठंडक किसी प्रकार रक्त-संचरण-नाड़ियों को संकुचित न कर सके। यदि चमड़ा गरम न रहेगा, तो रक्त शरीर के ऊपर से हटकर भीतर के यंत्र में संचित होगा। चमड़े और पोशाक का सफा होना बहुत जरूरी है, क्योंकि उससे त्वक्-नलियों की क्रिया अच्छी तरह होती है।

(३) रुधिर, पेशी की क्रिया से, धमनी और शिरा के भीतर होकर जाता है। अतएव शरीर और हाथ-पैरों में रक्त-संचरण होने और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये नित्य

पेशी-मंडल के नियमित व्यायाम की आवश्यकता होती है। जिन आलसी व्यक्तियों का चमड़ा विवर्ण और हाथ-पैर ठंडे होते है, उनके शरीर के रुधिर को द्रुतगामी करने के लिये पेशियों का नियमित व्यायाम, सुखदायक मानसिक क्रिया, चमड़े को नियमित घिसना और शीतल जल से स्नान, ये सबसे अच्छे उत्तेजक उपाय है।

(४) पेशियों के अलस रहने पर निर्दिष्ट समय के भीतर जितना रुधिर हृत्पिंड और फुप्फुस में जाता है, उससे अधिक पेशी-मंडल की प्रबल क्रिया से जाता है। श्वास-यंत्र की गति द्रुत होने के पहले यदि रुधिर फुप्फुस और बृहत् शिरा मे प्रवाहित हो, तो छाती फूल जायगी, और कष्ट का अनुभव होगा। उसके साथ ही हृदय की प्रबल और विशृंखल क्रिया संघटित होगी। वक्षःस्थल के कोटर मे इस प्रकार की अवस्था होने से उसे रक्त-संचय कहते हैं। रक्त-संचय को अँगरेज़ी में congestion कहते है। उस अवस्था मे खाँसी, फुप्फुस का फूलना, हफनी और हृदय के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कभी हम लोगों को थोड़े समय मे अधिक रास्ता चलना हो, या दौड़ना हो, अथच उक्त अवस्था से बचना चाहे, तो चाहिए कि पहले बहुत तेजी से न चलकर नियमित गति से चले। जितनी जल्दी साँस चले, उतनी ही, उसी क्रम से, गति की तेज़ी भी बढ़ानी चाहिए। इससे फुप्फुस मे यथेष्ट वायु घुसकर रक्त को शुद्ध करेगी। परिश्रम करने के पहले

और घोड़े की सवारी करने के समय इस नियम को स्मरण रखना चाहिए।

किसी से विशेष रूप से यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हम लोगों को स्वास्थ्य के लिये विशुद्ध रक्त की आवश्यकता है। रक्त शुद्ध रखने के लिये चमड़े, पेशी, हज्मियत और श्वास-प्रश्वास के ऊपर हम लोगा को विशेष दृष्टि रखनी चाहिए।

१—यदि रक्त दूषित हो, तो पेटेंट दवाओं से वह शुद्ध नहीं हो सकता। शरीर की रक्तवाहिनी नाड़ियाँ जब अपना काम नही करतीं, तब शरीर का क्षयीभूत पदार्थ संचित होने से रक्त दूषित हो जाता है। कपड़ा यथेष्ट न रहने से, या आवरण के अभाव के कारण, रक्तवाहिनी नाड़ियाँ अपना काम नही करतीं। ऐसी अवस्था मे पोशाक और स्नान पर विशेष दृष्टि रखने से रक्त शुद्ध हो सकता है।

२— अन्नरस (chyle) का कमी या विगुणता के कारण रक्त का दूषित होना संभव है। आहार के अनुपयोगी परिमाण या गुण से अथवा अन्न को अयथारूप से खाने से या असमय मे भोजन करने से ऐसी अवस्था उपस्थित होती है। ऐसी दशा मे भोजन पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए। इस विषय मे जो पीछे कहा गया है, उसका खयाल रखना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय

नाड़ी-मंडल

नाड़ी-मंडल कुछ तंतु-श्रेणियों से गठित है। ये तंतु प्रत्येक झिल्ली के कोने और छिद्र मे घुसे है। ये किसी-किसी विशेष स्थान में खिचकर घनिष्ठ भाव से परस्पर संबंध-युक्त भी पाए जाते है। ये स्नायु झिल्ली के हरएक काम के शासक और नियामक है। ये भिन्न-भिन्न अंगों को गति को समान या उसका सामंजस्य करते है। ये हरएक अंग की इच्छा-संबंधी क्रिया के ही नहीं, बल्कि इच्छा से न संबंध रखनेवाली क्रियाओं—जैसे हृदय के स्पंदन, पाचक रस के क्षरण और क्षय हुए पदार्थों के मूत्र-ग्रंथि से निःसरण आदि—के भी शासक है। नाड़ी-मंडल उन तंतुओं को भरता है, जो झिल्ली से उत्तेजना और संवाद ले जाते और अनुभव, बुद्धि तथा इच्छा-शक्ति का आधार है।

यदि हम लोग इस अद्भुत नाड़ी-मंडल पर ध्यान दे, तो यह विदित होगा कि वह केंद्रिक, स्नैहिक और पारिधिक-नाड़ी नाम के तीन भागों मे विभक्त है। केंद्रिक नाड़ी-मंडल करोटी के गह्वर में स्थित मस्तिष्क और करोरुका मज्जा से गठित है। मस्तिष्क एक यंत्र-विशेष है। इसका वज़न तीन पोंड से भी

अधिक और रंग धूसर-वर्ण का श्वेत है। इसके ऊपरी हिस्से मे बहुत-सी तहे हैं। इसमे दो बड़े पंखे-जैसे पदार्थ है। वे बृहत् मस्तिष्कार्द्ध (cerebral hemispheres) कहलाते और इस यंत्र के अधिकांश स्थान को घेरे हुए है। बृहत् मस्तिष्कार्द्ध अनुभव, बुद्धि और इच्छा-शक्ति का आधार है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि वह जीव-देह के व्यक्तित्व का परिचायक और इस कारण शरीर का उच्चतम और प्रभेद-निर्देशकारी अंश है। मस्तिष्कार्द्ध के पिछले सिरे के नीचे छोटे-छोटे व्यूह-तंतु अवस्थित है। वे देखने मे ठीक गोभी के फूल की तरह है। इस अंश को क्षुद्र मस्तिष्क (cerebellum) कहते है। इसके नीचे एक कोमल कंद (bulb) है। उसे पृष्ठवंशीय मज्जा के ऊपर स्थित बृहत् अंश (medula oblongata) कहते है। यह श्वास-प्रश्वास, रुधिर-संचालन, ग्रंथि से स्राव और अन्यान्य आवश्यक क्रियाओं का केंद्र-स्वरूप है। आघात से रक्षा करने के लिये यह झिल्लियो से ढका हुआ है। इसकी कुछ झिल्लियो के भीतर रस स्राव होकर एक प्रकार का जलीय स्नान होता है। सुषुम्ना भी ऐसी ही झिल्ली से ढकी हुई है। यह नाड़ीमय झिल्ली का एक मोटा नल-सा है, और इसके भीतर एक पनाली है। करोटी के तले से एक छिद्र के भीतर होकर, पृष्ठवंशीय मज्जा के उपस्थित बृहत् अंश को नॉघकर उसके बाद विपरीत प्रांत तक प्रथम

कटिस्थ कशेरुका चली आई है। शरीर की नाड़ियाँ सुषुम्ना द्वारा मस्तिष्क से मिली हैं। मस्तिष्क से निकली हुई बारह नाड़ियों को छोड़कर सभी नाड़ियाँ सुषुम्ना से निकली हैं। सुषुम्ना के बीच में वह केंद्र है, जिससे प्रस्राव, मल-त्याग आदि क्रियाएँ शासित होती है।

स्नैहिक नाड़ियों का मंडल (Sympathetic nervous system) भीतर के यंत्रों और रक्तवाहिनियों को शक्ति देता है। हरएक दो नाड़ियों से सुषुम्ना की विशेष छोटी-छोटी शाखाएँ निकली हैं। वे मेरु-दंड के ऊपर और नीचे निकली हुई वैसी ही शाखाओं से मिल गई है। उनके संगम-स्थान मे जो झिल्लियों की स्फूर्ति देख पड़ती है, उसे ganglion कहते है। ये ganglion-समूह शृंखला के आकार मे एक साथ ग्रथित होकर मेरु-दंड के सामने हर ओर है। ग्रीवा मे तीन जोड़ी नाड़ी-गंड हैं, किंतु वक्षःस्थल और उदर मे इनकी एक ही जोड़ी है। अर्थात् हरएक कशेरुका के सामने की हरएक दिशा मे एक-एक नाड़ी-गंड है। ये शाखाओं, आँतों और रक्त-वहा नाड़ियों को शक्ति देते और उनकी क्रियाओं के ऊपर आधिपत्य करते है।

पारिधिक नाड़ी-मंडल नाड़ियों से गठित है। यह मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा से निकलकर शरीर मे सब जगह व्याप्त है, और इसकी मुख्य शाखाएँ, धमनी की तरह, अनेक प्रशाखाओं मे विभक्त हुई हैं। प्रत्येक नाड़ी एक-एक तंतुओं की

गठरी से संगठित है। उनमें कुछ तो केंद्रस्थ नाड़ी-मंडल में संवाद ले जाने का काम करती हैं, और कुछ नाड़ी-मंडल में स'वाद ले आती है। इस प्रकार नाड़ी से सारा शरीर, टेली-फ़ोन के केंद्रस्थ दफ्तर की तरह, मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा के साथ संबंध-युक्त है। व्यूह-तंतुओं की क्रिया की खबर सदा सामने और पीछे के नाड़ी-मंडल पहुँचाते हैं। यहाँ तक कि निद्रा के समय भी, जब मस्तिष्क का उच्चतर केंद्र विच्छिन्न होता है, सुषुम्ना-शीर्षक (medula oblongata) से सदा सवाद, रक्त-संचालन, श्वास-प्रश्वास और मल-नि:सरण-यंत्र मे वाहित होकर, उनकी क्रिया को नियमित क'ता है।

बारह नाड़ियों ने, मस्तिष्क के प्रत्येक पार्श्व से निकलकर, निकटस्थ स्थानों को व्याप्त कर रक्खा है। प्रथम दो 'घ्राण (olfactory)-नाड़ियाँ' नासिका मे और द्वितीय दो 'दर्शन-नाड़ियाँ' चक्षु मे है। तीसरी दो नाड़ियाँ कुछ पेशियों मे जाकर अक्षि-गोलक मे गति-सचार करती हैं। चौथी दो नाड़ियाँ अक्षि-गोलक की दूसरी पेशी मे है। पाँचवीं दो नाड़ियाँ चर्वण-यंत्र की पेशी, मुख और जिह्वा के अनुभव-स्थान में है। छठी दो नाड़ियाँ चक्षु-गोलक की बाहरी पेशी मे हैं। सातवी दो मुख की पेशी मे और आठवी दो श्रवणेंद्रिय-सूचक नाड़ियाँ (auditory) कान मे है। नवीं दो गले की पेशी जिह्वा के अनुभव-स्थान मे हैं। दसवीं दो नाड़ियाँ कंठ-नली, हृत्पिंड,

फुप्फुस, गले की नली, पाकाशय आँत और यकृत मे है। ग्यारहवी दो नाड़ियाँ ग्रीवा की कुछ पेशियों मे और बारहवी दो नाड़ियाँ जिह्वा की पेशियों मे है।

सुपुम्ना की नाड़ियाँ भी दो-दो एक साथ अंकुरित है। उनमे से हरएक नाड़ी सुपुम्ना के कशेरुका-सगम-स्थान से निकलकर भीतर के कशेरुका-संगम-स्थान की ओर निकल गई है। इन नाड़ियों से शाखाएँ निकलकर प्रकांड (trunk) की पेशी के सामने और पीछे निकल गई है। परंतु जहाँ ऊपर और तले के अंग मिलित हुए है, वहाँ प्रायः नाड़ियों के मिल जाने मे नाड़ी-जाल (plexus) बन गए हैं, और उन नाड़ी-जालों से हरएक अंग की नाड़ियाँ निकली है। पाँचवीं, छठी, सातवी और ग्रीवा की आठवीं कशेरुका-नाड़ियों तथा पीठ की प्रथम कशेरुका-नाड़ी से हाथ का नाड़ो-जाल (bracshial plexus) बना है। इन मज्जाओ से कुछ प्रधान नाड़ियाँ निकली है। उनमे जो पैशिक त्वक् कहलाती है, जिन्हे अँगरेजी मे musculo cutaneous कहते है, वे द्विशिरस्का पेशी (biceps), अन्यान्य पेशी और अग्रबाहु के थोड़े-से चमड़े के साथ मिली है। इनको मध्यस्थ (median) कहते है। ये अग्रबाहु और हाथ की सामने की पेशियों से संलग्न है। अलना नामक जो प्रकोष्ठ की नाड़ी है, वह अग्रबाहु, हाथ के सम्मुख-स्थित आभ्यंतरीण पेशी और हाथ के चमड़े के भीतर चली गई है, और पैशिक पेच (musculospiral) कहलाती

है। वह अग्रबाहु के पीछे स्थित पेशी तथा प्रायः चमड़े के साथ मिली हुई है।

नीचे के अंग के दो नाड़ी-जाल है। एक कटि-नाड़ी (lumbar), और दूसरा त्रिकस्थि (sacral)। प्रथम चार कटि-नाड़ियों से शाखाएँ निकलकर कटि-नाड़ी-जाल को बनाती हैं। इनसे नाड़ी निकलकर चमड़े मे गई है। इनके सिवा सम्मुख जंघा (anterior crural) और रोधकी (obturator) नाम की दो विशेष आवश्यक शाखाएँ भी निकली है। पहला नाड़ी-जाल ऊरू के सामने की पेशी और उसके चमड़े मे फैला है। इसकी एक प्रशाखा, जा आभ्यंतरीण जंघा-शिरा (internal saphenous) कहलाती है, पैर और ऊरू की आभ्यंतरिक पेशी मे प्रविष्ट है। रोधकी-नामक नाड़ी ऊरू की आभ्यंतरिक पेशी मे फैली है।

पंचम अध्याय

पाक-यंत्र

हनु, मुख, लाला-ग्रंथि, गला (pharynx), अन्न-प्रनाली (oesophagus), आमाशय, छोटी और बड़ी आँते, लसिका-नली (lacteals), महालसिकावाहिनी (thoracicduct), यकृत, प्लीहा और क्लोम (pancreas) से पाक-यंत्र संगठित है।

उदर एक बड़ा गढ़ा-सा है। इसके सामने और आस-पास निम्नस्थ पंजर और उदर-संबंधी पेशियाँ है। ऊपर वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी (diaphragm) और नीचे वस्तिगह्वर अवस्थित है। वस्तिगह्वर को अँगरेजी मे pelvis कहते हैं। उदर मे आमाशय, आँतं, यकृत, क्लोम, प्लीहा और मल निकलने के यंत्र हैं।

मुख मे चर्वण और आस्वादन का यंत्र है। उसमे छ लाला-ग्रंथियाँ है, तीन मुख के एक ओर और तीन दूसरी ओर। इनमे जो दो बड़ी ग्रंथियाँ है, उन्हे कर्णाग्रवर्ती लाला-ग्रंथियाँ कहते है। ये कान के बाहर सामने की ओर और हनु के कोने के पीछे अवस्थित है। इन लाला-ग्रंथियों के द्वार मुख के भीतर है, और वे ऊपरी हनु के द्वितीय चर्वण-यंत्र की उलटी ओर खुले हैं। निम्न हनु मे स्थित दो लाला-ग्रंथियाँ (sub-maxillary

gland) नीचे के हनु के बीच में हैं। इनके द्वार मुख के भीतर, जिह्वा की लगाम के पास, हैं। अन्य दो ग्रंथियाँ जिह्वाधोवर्ती ग्रंथि कहाती हैं। उन्हे अँगरेजी में sublingual gland कहते हैं। वे लंबी, चौरस और मुख की श्लैष्मिक झिल्ली के नीचे हैं।

मेरु-दंड के ऊपर कंठ (pharynx) अवस्थित है। यह करोटी के नीचे से श्वास-नली के ऊपर तक फैला है। श्वास-नली को अँगरेजी में trachea कहते हैं। यह पेशी श्लैष्मिक झिल्ली, रक्तवाहिनियों और नाड़ियों से गठित है। कंठ के ऊपर और सामने पीछे की नाक है। मुख के भीतर, पीछे की नाक के नीचे, कोमल तालु से कुछ ढका हुआ, एक बड़ा गढ़ा है। कंठ के गढ़े और जिह्वा-मूल में स्वर-यंत्र अवस्थित है। कंठ अन्न-प्रनाली में जाकर समाप्त हुआ है।

अन्न प्रनाली गले की नली है। इसका नल मुख से आमाशय तक विस्तृत है।

आमाशय बाईं ओर वक्ष उदर-मध्यस्थ पेशी के साथ संलग्न होकर उसके नीचे अवस्थित है। इसका छोटा सिरा यकृत के बाएँ भाग के नीचे निम्नोदर तक विस्तृत है। यह दो जगह से टेढ़ा है। एक जगह अधिक और दूसरी जगह थोड़ा। इसमे दो द्वार भी है, जिनमे एक का गल-नली के साथ और दूसरे का द्वादशांगुलांत्र (duodenum) के साथ संबंध है। पाकाशय देखने मे भिश्ती की मशक की तरह टेढ़ा है। उसके

तीन आच्छादनी है—एक वाह्य आच्छादनी, जिसे रक्तांबु-स्राविनी (serous) कहते है। दूसरी मध्य की आच्छादनी पैशिक है। तीसरी भीतर की आच्छादनी श्लैष्मिक है। इसमें छोटी-छोटी थैलियाँ हैं, जिनसे आच्छादनी-रक्षक श्लेष्मा निकलती है। आमाशय में बहुधा छोटी-छोटी गाँठे पाई जाती है। उनसे पाचक रस (gastric juice) झरता है।

छोटी-छोटी आँते प्रायः २५ फ़ीट लंबी है। उनके तीन विभाग है। तथा द्वादशांगुलांत्र, शून्यांत्र (jejunum) और कटिदेशांत्र (ilium)।

द्वादशांगुलांत्र लबाई और चौड़ाई मे बारह अगुल के लगभग होने के कारण इस नाम से पुकारी जाती है। यह आमाशय के नीचे के सिरे के निकटस्थ छिद्र से शुरू होकर, आँत मे घुसने के बाद टेढ़ी होकर, यकृत के नीचे पीछे की ओर उठी है।

द्वितीय विभाग की आँते शून्यांत्र कहलाती है; क्योंकि मृत्यु के बाद वे शून्य पाई जाती है। ये और और आँतों से मोटी और पाटल-वर्ण है। ये द्वादशांगुलांत्र से शुरू होकर कटिदेशांत्र मे समाप्त हुई है। कटिदेशांत्र-संज्ञक तीसरे विभाग की आँतें छोटी आँतों के $\frac{3}{5}$ भाग मे व्याप्त है। ये देखने में मैली और बिनावट मे शून्यांत्र की अपेक्षा पतली है। इनमे आरंभ और अंत का कुछ चिह्न नहीं देख पड़ता। कटिदेशांत्र दक्षिण-गह्वर मे जाकर समाप्त हुई है। परंतु इनका मुख स्थूलांत्र (colon) की ओर है।

दक्षिण ओर, वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी के नीचे, यकृत है। शरीर मे यही सबसे बड़ा यंत्र है। इसका वजन चार पौंड के लगभग है। यह खाद्य-संबंधिनी नली मे लगा और कुछ बंधनों से बँधा हुआ है। इसका ऊपर का हिस्सा औंधा और नीचे का कुबड़ा है। यह दो काम करता है—एक तो शैरिक रक्त से दोष को दूर करता है, और दूसरे पित्त-क्षरण करता है।

लीहा देखने मे आयतक्षेत्र (oblong) के माफिक है। यह बाईं ओर वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी के साथ संलग्न है। इसका भी बाहरी अंश औंधा है। इसके भीतरी भाग मे एक गढ़े में दो भाग है।

क्लोम लाला-ग्रंथि के अनुरूप है। यह छ इंच के लगभग लंबा और वजन मे तीन-चार औंस है। यह उदर के गढ़े मे आमाशय के पीछे अवस्थित है।

अंत्रश्छदा कला की चार तहे हैं। ये आमाशय के साथ लगी हुई और अँतड़ियों के आगे अवस्थित है। इसकी रक्त-वाहिनियों के चारो ओर चर्बी जमा रहती है। यह दो काम करता है। एक तो आँतों को रेगने मे सहायता देना और दूसरे क्षुद्रांत्र को ठंडक से बचाना। धमनी, शिरा, शोषक नाड़ी और आवुसंबंधी नाड़ी-मंडल से आई हुई नाड़ियाँ इसमे भरी है।

पुष्टि के लिये जिन पदार्थों को हम लोग खाते है, वे हजम हो जानेवाले होने चाहिए। कड़ी चीजों को दाँतों से खूब चबा-

कर महीन कर लेना चाहिए। भोजन चबाते समय मुख की लाला-ग्रंथि से राल निकलकर आहार के साथ मिलती है। राल खाद्य पदार्थ को भिगोकर नरम बना देती है, जिससे वह सहूलियत के साथ आमाशय में चला जाता है।

जब भोजन अच्छी तरह चबाया जाता है, तब वह आमाशय की आच्छादनी को संकुचित ही नही करता, बल्कि आमाशय की ग्रथियों को क्रिया करने के लिये उत्तेजित भी करता है। उक्त ग्रंथियों से पाचक रस झरता है। इस रस की क्रिया से और आमाशय की पैशिक संकुचन शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार के खाए हुए पदार्थ नरम हो जाते है। जिस परिवर्तित अवस्था में खाए हुए पदार्थ आमाशय मे जाते है, उस पर पित्त किसी प्रकार का कार्य नही करता। आमाशय जब स्वस्थ अवस्था मे रहता है, तब किसी प्रकार पित्त नहीं देख पड़ता। सर्वसाधारण की यह भूल है कि वे आमाशय मे पित्त के अधिक होने का अनुमान करते हैं। वमन करने के समय साधारणतः जो पित्त देख पड़ता है, उससे यह समझा जाता है कि केवल आमाशय ही नहीं, बल्कि द्वादशांगुलांत्र की क्रिया भी विकृत हो गई है। इस प्रकार वमन कारक ओषधियाँ स्वस्थ आमाशय से पित्त को ले आती हैं। यदि इस विषय में साधारणतः अधिक जानकारी रहे, तो बहुतेरे आमाशय वमनकारक ओषधियों से बच जायँ। लोग पित्त-संचय की भ्रांत धारणा से वमनकारक ओषधियों का सेवन करते हैं। वारंवार ऐसा करने से आमाशय

का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, और उससे स्थायी रोग उत्पन्न होते है।

पाकस्थली के पके अन्नादि (chyme) आमाशय से अंत्रद्वारी (pylorus) होकर द्वादशांगुलांत्र मे जाते हैं। वे यकृत, द्वादशांगुलांत्र और क्लोम को उत्तेजित करते हैं। यकृत से पित्त, क्लोम से क्लोमिक रस और द्वादशांगुलांत्र से आम झरता है। पित्त और शोणित रस द्वादशांगुलांत्र मे पहुँचकर पाकस्थली के जीर्ण अन्नादि का थोड़ा-सा अंश पाकरस-नामक श्वेत-वर्ण रस बन जाता है। यह पाक-रस और अन्य पदार्थ, पैशिक आच्छादनी के रेंगने से, क्षुद्रांत्र के श्लैष्मिक परदे के ऊपर जाते हैं। आँत के भीतर होकर जब पाक-रस जाता है, तब उसे लसिका-नली खींचकर अंत्र की लसिका ग्रंथियों के भीतर से महालसिकावाहिनी मे भेज देती है। यहाँ से वह ग्रीवा के निम्नदेशस्थ वृहत् शिरा के भीतर होकर शैरिक रक्त में मिल जाता है। क्षय हुए पदार्थ अंधांत्र (cæcum) मे चले जाते हैं। क्षयीभूत पदार्थ-समूह उक्त यंत्रों की स्वास्थ्य-क्रिया के स्वाभाविक उत्तेजक है। अतएव स्पष्ट रूप से समझा जाता है कि खाने की चीजें बहुत गाढ़ी या अत्यंत गुरु-पाक न होनी चाहिए। उनमे क्षय होनेवाले पदार्थ का यथेष्ट अंश होना परम आवश्यक है। इसी कारण महीन आटे की रोटी से मोटे आटे की रोटी अधिक व्यवहार के लिये उपयोगी है।

परिपाक-क्रिया के भिन्न-भिन्न परिवर्तन होते हैं—जैसे (१) चबाने से आहार मे राल का मिलना, (२) आमाशय के पैशिक संकुचन और पाचक रस के कारण आमाशय मे खाद्य का परिवर्तित अवस्था मे गमन, (३) पित्त और क्लोम-रस से खाद्य का पाकस्थली के जीर्ण अन्नादि मे परिणत होना, (४) पाक-रस का लसिकावाहिनी से बहकर, महालसिकावाहिनी नाड़ी के भीतर होकर जत्रुवस्ति शिरा (subclavian vein) मे जाना और (५) मल निकलना।

शरीर का स्वाभाविक नियम यह है कि हरएक यंत्र की क्रिया उसकी नियमित उत्तेजना से होती है। अतएव शरीर का अभाव दूर करने के लिये पुष्टिकारक आहार आवश्यक होता है। वह चबाते समय लाला-ग्रंथियों को उत्तेजित करता है। जो खाद्य अच्छी तरह चबाया गया है, और जिसमे राल अच्छी तरह मिल गई है, वह आमाशय को स्वस्थ रखता है। पाकस्थली के अच्छी तरह पचे हुए अन्नादि द्वादशांगुलांत्र, यकृत् और क्लोम को स्वाभाविक रूप से उत्तेजना पहुँचाते है। यदि खाद्य अच्छी तरह चबाया न गया हो, तो उसका परिवर्तन भी दूषित होगा। यदि जीर्णावस्था (chymification) को प्राप्त हो, और पाक-रस की उत्पत्ति की प्रक्रिया (chylification) मे दोष घटित हो, तो परिपाक के विषय मे खाद्य का अतिरिक्त परिवर्तन भी दोष-युक्त होगा।

पाचन-क्रिया के उत्कर्ष और साधारण स्वास्थ्य के लिये नीचे-लिखे नियमों पर दृष्टि रखनी चाहिए—

(१) कितना भोजन करना चाहिए ?

(२) खाने की चीज कैसी होनी चाहिए ?

(३) किस नियम से खाना उचित है ?

(४) भोजन के समय शरीर की अवस्था कैसी होनी चाहिए ?

पहले नियम के विषय में कहना यह है कि यह देखकर आहार का परिमाण निश्चित करना चाहिए कि शरीर की उन्नति किस तरह जल्दी-जल्दी होती है, और समय पर कितना मल निकलता है। जो बालक शीघ्र-शीघ्र बढ़ता और अधिक व्यायाम करता है, उसे हड्डी, पेशी और क्षय की पूर्ति के अनुसार भोजन करना चाहिए। जो लोग संतान का प्रतिपालन करते हैं, उन्होंने देखा होगा कि स्वस्थ और बढ़ रहे बालकों की भूख और पाचन-शक्ति कितनी तेज होती है, और वे कितनी जल्दी भोजन की इच्छा प्रकट करते हैं। परंतु जैसे-जैसे शरीर पकने लगता है, वैसे-ही-वैसे आहार की इच्छा भी घटती जाती है। उस समय चमड़े और शरीर के अन्यान्य यंत्रों की क्रिया के कारण जो क्षय होता है, उसकी पूर्ति के लिये आहार भी यथेष्ट होना चाहिए। स्वाभाविक नियम के अनुसार क्रिया होने से क्षय अनिवार्य है। अलस बालक-बालिकाओं की अपेक्षा परिश्रमी बालक-बालिकाओं को, शरीर में क्षय अधिक होने के

कारण, अधिक आहार की आवश्यकता होती है। जो लड़के खुली हवा मे खेलते और व्यायाम करते हैं, वे यदि व्यायाम छोड़कर परिश्रम-हीन कार्य या व्यवसाय मे लग जायँ, तो उन्हे आहार भी कम आवश्यक होगा। कसरत या मेहनत कम करने के बाद भी यदि उतना ही आहार किया जायगा, तो शरीर मे रोग उत्पन्न कर देगा। इससे माता-पिता को उचित है कि वे इस बारे मे आप सावधान रहे, और बालकों को भी सावधान कर दें।

दूसरे नियम के विषय मे यह कहना है कि आमाशय और आँतों की फैलने की शक्ति के अनुसार खाद्य का गुण होना चाहिए। पाव-भर वस्तु खाने से आमाशय पूर्ण हो सकता है, किंतु वह इतना फैल सकता है कि सवा सेर वस्तु धारण कर सके। शरीर में जितनी पुष्टई की जरूरत होती है, खाद्य मे यदि उससे कम रहेगी, तो वह आमाशय और आँतों को आवश्यक उत्तेजना तथा क्षयीभूत पदार्थों को घुसने पर घर्षण न दे सकेगी। आहार्य वस्तु मे यदि क्षयीभूत पदार्थ कम रहे, तो आमाशय मे प्रबल व्याधि उत्पन्न हो सकती है। इसलिये पुष्टिकर पदार्थ के साथ अपुष्टिकर क्षयीभूत पदार्थ भी रहना चाहिए। मैदे की अपेक्षा आटे मे क्षयीभूत पदार्थ अधिक रहता है। इस कारण वह साधारण व्यवहार के लिये अच्छा है। इसी कारण मेहनती आदमियों की अपेक्षा निठल्ले आदमियों का आमाशय दुर्बल रहता है। अतएव उन लोगों

को इस विषय की पूरी जानकारी रहनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर मैं यह कहती हूँ कि यदि किसी कुत्ते को केवल चीनी, तेल, घी या और कोई चीज एक सप्ताह तक खिलाई जाय, तो उसका कुफल शीघ्र ही देख पड़ेगा। पहले कुत्ता बड़े आग्रह के साथ खाने लगेगा, और उससे उसकी उन्नति भी देख पड़ेगी, किंतु शीघ्र ही उसकी भूख मर जायगी, उसका शरीर दुर्बल हो जायगा; उसे आँखो से सूझ न पड़ेगा, और एक सप्ताह में वह मर भी जायगा। किंतु यदि चोकर अथवा लकड़ी का बुरादा मिलाकर दिया जाय, तो कुत्ता बराबर स्वस्थ, सबल बना रहेगा। घोड़े का भी यही नियम है। यदि उसे घास न देकर केवल खली-दाना खिलाया जाय, तो वह जल्दी मर जायगा।

अगले पृष्ठ पर दी हुई सूची देखकर प्रश्न हो सकता है कि जो खाने की चीज जल्द हजम हो जाय, वही बहुत पुष्टिकर है? इसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि पेशियों और अन्यान्य यंत्रों के लिये जो नियम है, वही आमाशय के लिये भी। आमाशय का व्यायाम ही उसे बलिष्ठ करता है। इसलिये जो चीजे बहुत जल्द हजम हो जाती है, वे यदि हमेशा खाई जायँ, तो आमाशय दुर्बल हो जायगा। प्रत्येक आहार का गुण, परिमाण आदि इस विषय मे आमाशय की रक्षा के लिये उपयुक्त होना चाहिए।

कौन चीज़ हज़म होने मे कितना समय लगता है, इसकी सूची नीचे दी जाती है—

चीज़	किस तरह बनी	हज़म होने का समय	
		घंटा	मिनट
भात	उबाला हुआ	१	०
अडा	कच्चा	१	३०
मछली	उबाली हुई	१	३०
शूकर	,,	१	०
सागूदाना	उबाला हुआ	१	४५
दूध	,,	२	०
गोभी सिर्के मे	कच्ची	२	०
अंडा	पकाया हुआ	२	१५
टर्की चिड़िया जंगली	भुनी	२	१८
,, ,, पालतू	,,	२	२५
दूध	कच्चा	२	१५
आलू	भुना	२	३०
मुर्गी का बच्चा बड़ा	तरकारी बना	२	४५
,, ,, मांस	उबाला	२	४५
घी	पकाया	३	३०
रोटी गेहूँ की	ताजी	३	३०

तीसरे नियम के विषय मे यह कहा जा सकता है कि आहार के लिये एक निर्दिष्ट समय की आवश्यकता होती है। परवर्ती आहार मे आहार के गुण, आहार करनेवाले की अवस्था, स्वास्थ्य, व्यायाम और अभ्यास के अनुसार समय नियमित होना चाहिए। वृद्ध, आलसी और दुर्बल की अपेक्षा युवा, परिश्रमी और सबल की परिपाक-क्रिया प्रबल और जल्दी होता है। इस कारण दुर्बल की अपेक्षा सबल अधिक बार भोजन कर सकता है। कोई-कोई जवान और सबल आदमी खाई हुई वस्तु को एक घंटे मे हज़म कर सकते है। मगर उसी चीज़ को दूसरे आदमी चार या उससे भी अधिक घंटों में हज़म कर पावेगे।

प्रायः साधारण भोजन हजम करने मे दो या चार घंटे का समय लग जाता है। एक बार आहार हज़म करने के बाद आमाशय अपनी शक्ति प्राप्त करने मे एक से तीन घंटे तक का समय लेता है। इसके बाद फिर वह प्रबल रूप से काम करने लायक होता है। अतएव लड़कों को यह अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि यदि आमाशय विश्राम के द्वारा अपनी शक्ति प्राप्त करने के पहले फिर भोजन से भर दिया जायगा, तो पाचक-रस का क्षरण और आमाशय के पैशिक तंतुओं का संकुचन यथोचित रूप से न होगा। पूर्वभुक्त आहार हज़म होने के पहले यदि भोजन कर लिया जायगा, तो उसका फल अच्छा न होगा; आंशिक जीर्ण खाद्य के साथ पीछे खाया हुआ पदार्थ मिल

जायगा। इसलिये हरएक बार भोजन करने के बीच का समय अच्छी तरह हज़म होने के लिये अधिक होना चाहिए, और क्लांति दूर करने के लिये आमाशय को अधिक देर तक विश्राम करने का अवसर देना चाहिए। मनुष्य और उसका आमाशय जितना अधिक दुर्बल हो, उतना ही अधिक उसे इस नियम पर ध्यान देना उचित है।

शिशुओं के प्रतिपालन और सयाने लड़के-लड़कियों को भोजन देने मे यह सदा स्मरण रखना चाहिए। न पढ़ने-लिखने-वाले बालक की अपेक्षा पढ़ने-लिखनेवाले बालक मे हज़म करने की शक्ति कम होती है। बालकों को उपयुक्त नियम से आहार करना सिखाना चाहिए। यह बतलाना चाहिए कि कौर को खूब चबाकर निगलना उचित है। यों खाने से आमाशय से क्षरित रस सहज ही भोजन से मिलकर उसे हज़म कर डालेगा। थोड़ा चबाकर खाने से या एकदम लील जाने से हज़म करने की शक्ति घट जाती और शरीर की पुष्टि को भी हानि पहुँचती है। चबाने मे जल्दी न करनी चाहिए; धीरे-धीरे चबाना अच्छा है। इस तरह चबाकर लीलने से लाला-ग्रंथियाँ क्रिया करने के लिये उत्तेजित होंगी; क्योंकि भोजन को तर करने के लिये अधिक राल निकलने की आवश्यकता होती है, और वह समय-सापेक्ष है। यदि यथेष्ट राल न मिलेगी, तो देर मे हज़म होगा। इस कारण जल्दी-जल्दी आहार करने से रोग की उत्पत्ति होती है।

यह स्पष्ट जान पड़ता है कि भोजन को तर करने के लिये लाला-ग्रंथियाँ रस देती हैं। इसी कारण आहार के समय पानी पीने या और किसी तरल पदार्थ के सेवन की आवश्यकता नहीं होती। तरल पदार्थ से भोजन तर करने मे आपत्ति यह है कि भोजन राल से तर नहीं होता। इस प्रकार, लाला-ग्रंथियों की यथोचित क्रिया न होने के कारण, मनुष्य रोगी हो जायगा, और उसकी पाकस्थली भी उत्तेजना के अभाव से शिथिल पड़ जायगी। इसके सिवा अधिक पानी पीने या तरल पदार्थ के सेवन से आमाशय बहुत फूल जाता और पाचक-रस की शक्ति घट जाती है।

आहार के उपरांत थोड़ा पानी पीने से भोजन पचने में सहायता मिलती है, मगर यह बात नहीं कि वह बहुत जरूरी हो।

गरम चीज़ खाने या पीने के अभ्यास से मसूढ़े मे और मुँह के भीतर घाव हो जाते हैं, दाँत गिर जाते है और अजीर्ण भी हुआ करता है। गरम खाना या पीना थोड़ी देर के लिये मुँह और आमाशय की श्लैष्मिक झिल्ली को उत्तेजित करता है, किंतु शीघ्र ही उसकी प्रतिक्रिया आकर श्लेष्मिक झिल्ली को दुर्बल कर देती है।

यदि आहार के समय अधिक ठंडा पानी पिया जाय, तो स्वास्थ्य बिगड़ सकता है। भोजन या पानी ठंडा हो, तो पाकाशय और चारो ओर के यंत्रों से गरमी खिचकर ठंडे भोजन या पानी को गरम करेगी। फल यह होगा कि

शरीर का बल घट जायगा। खाने या पीने की चीज बहुत गरम या बहुत ठंडी न होनी चाहिए। वह गुनगुनी होनी चाहिए; क्योंकि वही पाक-यंत्र की स्वाभाविक अवस्था के अनुकूल है।

आहार के समय शरीर की अवस्था पर भी ध्यान देना उचित है। शारीरिक या मानसिक परिश्रम अधिक करने के उपरांत ही भोजन न करना चाहिए, क्योंकि विश्राम के समय अधिक काम करने से अधिक रुधिर की आवश्यकता होती है। मस्तिष्क और अंग-प्रत्यंग की क्रिया मे जैसे यह नियम प्रयोज्य है, वैसे ही भोजन हजम करने के समय आमाशय और आँतों के विषय मे भी। फालतू काम करने के समय यंत्र में अधिक रुधिर संचित होने पर वह शरीर के अन्यान्य यंत्रों से खिच आता है। जो अंग फालतू काम करनेवाले अंग को रुधिर देगा, वह दुर्बल हो जायगा। जब कोई अंग अधिक समय तक अधिक काम करता रहता है, तब अधिक क्रिया को घटाने और शरीर के अन्यान्य अंगों मे नियमित क्रिया से रस देने के लिये समय की आवश्यकता होती है।

टहलने और दौड़ने मे पेशियाँ प्रबल रूप मे काम करती हैं। वे रुधिर को अपनी ओर खींचती है। पेशियों के इस प्रकार अतिरिक्त काम करने के समय आमाशय अलस और भोजन हजम करने की शक्ति से रहित हो जाता है। इसलिये आहार के उपरांत ही अधिक परिश्रम करना उचित नहीं। खाने से

घंटा-भर पहले या पीछे गीत या वक्तृता से स्वर-यंत्र को क्रिया-शील अथवा लगातार मस्तिष्क-संचालन करना अनुचित है। वार्तालाप और आनंद की हँसी से भोजन पचने मे सहायता होती है। इस विषय मे निम्न-लिखित रूप से परीक्षा की जा सकती है। दो कुत्तों को एक तरह का भोजन खिलाकर एक को शिकार के लिये भेज दो, और दूसरे को चुपचाप आराम करने दो। एक घंटे बाद दोनो कुत्तों को मार डालो। देखोगे, जो कुत्ता आराम करता था, उसकी पाकस्थली प्रायः खाली हो गई है, और दूसरे की पाकस्थली मे भोजन प्रायः जैसे-का-तैसा है। एक की दैहिक क्रिया आमाशय मे और दूसरे की शक्ति दौड़ने के कारण पैरों मे सीमाबद्ध थी। अतएव आहार के बाद यदि मस्तिष्क और पेशियों का संचालन किया जाय, तो आमाशय की शक्ति अन्यत्र खिंच जायगी।

सब लोग अच्छी तरह जानते हैं कि परिपाक-शक्ति मानसिक क्रिया के अधीन है। यदि कोई बहुत भूखा व्यक्ति खाने बैठे, और उसी समय उसके किसी साथी के मरने की या कोई संपत्ति नष्ट होने की खबर पहुँचे, तो उसी समय उसकी भूख न-जाने कहाँ चली जायगी; क्योंकि मस्तिष्क उस शक्ति को खींच लेगा।

खाने के उपरांत कम-से-कम तीन घंटे बाद सोना उचित है। यदि कोई भोजन के बाद थोड़ी देर मे सो जाय, तो उसे अच्छी तरह नींद न आवेगी, अप्रिय स्वप्न देख पड़ेंगे,

या शूल की वेदना घेर लेगी। ऐसी अवस्था मे मस्तिष्क शक्ति-हीन रहता है, और आमाशय मे जिस वात-शक्ति की आवश्यकता होती है, वह स्थगित रहती है। हज़म करने के लिये वात-शक्ति यथेष्ट न होने पर पाकाशय का खाद्य अपरिवर्तित अवस्था मे रहता है, और इस कारण उसमे ज्वाला उत्पन्न होती है।

लोग कहते है, इच्छा होने पर आहार करने से किसी प्रकार की हानि की संभावना नही रहती। यह भ्रम है। यदि ऐसा करे, तो इस भ्रम का अनुभव भी हो सकता है। यदि कोई आदमी अधिक देर तक भूखा रहे, तो उसका आमाशय और दैहिक शक्ति दुर्बल हो जाती है। जल-मग्न जहाज़ अथवा रोग-विमुक्त मनुष्य इसके उत्तम उदाहरण है। इसका कारण यही है कि अधिक देर तक भूखे रहने से आमाशय दुर्बल हो जाता है, और तब वह, जीर्ण करने की शक्ति कम होने के कारण, अधिक समय मे भोजन पचा सकता है। पेशियाँ दुर्बल होने पर टहलना भी वैसा ही हानिकारक है।

चर्म की दशा भी आमाशय के ऊपर विशेष प्रभाव डालती है। नंगे बदन होने या ठंडक के कारण यदि पसीना बद हो जाय, तो आमाशय और उसके सहकारी यंत्रों की क्रिया-शक्ति घट जायगी। इसलिये अपरिच्छन्न (नंगे) अथवा ठंडक मे बैठनेवाले व्यक्तियों के आमाशय और यकृत मे पीड़ा होते अधिकतर देखा जाता है।

पंजर और वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी को बाधा प्राप्त होने से हज़म करने की शक्ति घट जाती है। ऐसा होने से केवल फुफ्फुस के रुधिर की जारण-क्रिया को ही बाधा नहीं पहुँचती, बल्कि वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी के उन्नयन और अवनयन, प्रतिहत होकर, उदर की क्रिया में भी रुकावट डालते हैं। हरएक निःश्वास में पंजर ऊँचा होता और वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी का केंद्र स्थान एक से दो इंच तक झुकता है। इस अवनयन के साथ-साथ उदर की सामने की पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। हरएक प्रश्वास में शिथिल उदर की पेशियाँ संकुचित होती हैं, पंजर झुकता है, वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी शिथिल होती और केंद्र-स्थान ऊँचा होता है। वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी की गति ही आमाशय, यकृत और उदर-यंत्रादि के ऊँचे होने और झुकने को नियमित करती है। अतएव जो लोग तंग पोशाक से पंजर और उदर-पेशियों की अबाध गति को बाधा पहुँचाते हैं, वे यह नहीं जानते कि उससे आमाशय की शक्ति घट जाती है। यदि वे इस बात को जानें, तो कभी वैसा न करें। बाधा को प्राप्त पंजर और उदर-पेशियाँ स्वास्थ्य के लिये आवश्यक, पूर्ण और गभीर श्वास नहीं लेने देतीं। इसका फल यह होता है कि दैहिक क्रिया दुर्बल होने से स्वास्थ्य भंग हो जाता है।

उठने-बैठने का ढंग भी आमाशय के ऊपर अपना असर डालता है। यदि कोई सामने झुका रहता है, तो वस्ति-गह्वर

की हड्डियाँ (Pelvic bones) और वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशियाँ निकट आ जाती है। इससे वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी के झुकने मे बाधा पहुँचती है। आमाशय, यकृत, क्लोम और उदर के उन्नयन-यंत्रादि मे दबाव पड़ने से उनमे रोग पैदा होना अवश्यंभावी है। स्वस्थ और पूर्ण विकसित पेशियाँ मेरु-दंड सीधा रखती हैं। इस कारण आमाशय का स्वास्थ्य ठीक रहता है। अतएव बालकों को टहलने और पढने के समय सीधे रहने की आदत डलवानी चाहिए। सीधे बैठने से पंजर और उदर पेशियों की क्रिया मे बाधा नहीं पहुँचती, और इसी से अजीर्ण-रोग भी भाग जाता है।

दूषित वायु खाने की इच्छा को घटा देता और हाजमे को दुर्बल बना देने की बड़ी शक्ति रखता है। जो लोग तग और वायु-हीन स्थान मे सोते हैं, उन्हे सबेरे बिलकुल भूख नहीं लगती, और मुँह तथा गला सूखा करता है।

सर्दियों की अपेक्षा गरमियों में चमड़े की नलियाँ अधिक क्रियाशील रहती है। इस कारण आमाशय दुर्बल हो जाता और आँतों मे एक प्रकार की जलन होती है। इससे समझा जा सकता है कि इस समय शीतकाल की अपेक्षा थोड़ और अनुत्तेजक आहार की जरूरत होती है। इस नियम पर दृष्टि रखने से, स्नान करने से और काफी पोशाक पहनने से आँतों का कोई रोग नहीं होने पावेगा।

षष्ठ अध्याय

श्वास-यंत्र

श्वास खींचने और छोड़ने को श्वास-क्रिया कहते हैं। श्वास-यंत्रों के नाम हैं स्वर-यत्र (Larynx), वायु-नली (या टेटुआ) और फुप्फुस। वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी, पंजर और उदर की पेशियाँ श्वास-क्रिया के अधीन हैं।

वक्ष-कोटर (thorax) मे फुप्फुस हैं। फुप्फुस का आकार केले के फूल के माफ़िक है। यह हृदय धारण किए हुए, वक्षःकोटर के दोनो ओर अवस्थित और बीच मे झिल्लीमय परदे के द्वारा पृथक् किया हुआ है। फुप्फुस देखने मे गुलाबी धूसर-वर्ण है, पर वास्तव मे विविध वर्णों से रंजित और कृष्ण-वर्णाभ भी है। प्रत्येक फुप्फुस सूक्ष्म भागों (lobe) मे बिभक्त है। दाहना फुप्फुस बाएँ से बड़ा है।

हरएक फुप्फुस आवरक(pleural)-नामक रक्तांबुस्राविनी झिल्ली (serous membrane) से घिरा है। दोनो फुप्फुस वायु-नली की शाखा से बने हैं।

हरएक फुप्फुस अपनी जड़ से अपनी जगह मे संलग्न है। इसमें से हरएक की जड़ फुप्फुस की धमनी, फुप्फुस की शिरा, वायु-नली और नाड़ी-जाल से गठित है।

स्वर-यंत्र ग्रीवा के सामने की वायु-नली और जिह्वा के बीच मे अवस्थित है। वायु-नली स्वर-यंत्र से पृष्ठदेशीय कशेरु के $\frac{2}{3}$ अंश तक फैली है। वहाँ से उसकी दो शाखाएँ हुई है, जो भुजाओं द्वारा अपने-अपने फुप्फुस मे चली गई है। फुप्फुस मे पहुँच-कर हरएक शाखा की दो शाखाएँ हुई है। उनमे से हरएक शाखा फिर विभक्त होकर छोटी-छोटी थैलियों के रूप मे परिणत हुई है। थैलियो की परिधि एक इंच के २० से २०० अश तक है। वायु-कोष्ठ संख्या मे इतने अधिक है कि उनका झिल्ली का परिसर मनुष्य के शरीर-भर मे २०,००० वर्गइंच से भी अधिक है। फुप्फुस अधिकतर छोटी-छोटी वायु-नलियों और कोष्ठों से गठित है। पर इनके एकदम फूलने से वायु भर जाती है, और हर हाल मे इनका गुरुत्व जल से कम होने के कारण ये युक्त यंत्रों की रोधनी कहलाती है। वायु-नली, श्वास-प्रणालियाँ (Bronchi) और वायु-कोष्ठ श्लैष्मिक झिल्ली से ढके हुए है। शरीर के और-और स्थानों की तरह फुप्फुस मे भी धमनी, शिरा, शोषक नाड़ी और सूत्र देखने में आते है।

फुप्फुस के हरएक निःश्वास मे श्वास-संबंधिनी पेशियाँ पंजरों को ऊँचा करता है, और उसी समय वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी के संकुचन के कारण पंजर झुक जाते और वक्षःस्थल की परिधि बढ़ जाती है। पंजर के उन्नयन और वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी के अवनयन के साथ-साथ उदर की पेशियाँ शिथिल हो जाती है, और उदर सामने निकल आता है। पंजर और वक्ष-

उदर-मध्यस्थ पेशी की क्रिया से वक्षःस्थल का गह्वर बढ जाता और फुप्फुस खाली हो जाता है। वायु-नली और वायु-कोष्ठ में जो हवा जाती है, उसकी प्रबलता से साम्य रक्षित होता है।

प्रश्वास मे उदर-पेशी के संकुचन के कारण पंजर अवनत होता है, वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी भी शिथिल हो जाती और केद्र ऊँचा हो उठता है। इसके द्वारा वक्षःकोटर संकुचित होता और वायु-कोष्ठ से वायु निकलने के कारण फुप्फुस आयतन मे घट जाता है।

दूषित या शैरिक रक्त फुप्फुस की धमनी के भीतर होकर हृदय की दाहनी ओर से फुप्फुस मे जाता है। यह धमनी, जहॉ तक रक्तवाहिनियॉ केश के समान सूक्ष्म नही हो गई हैं, वहॉ तक, अनेक भागों मे विभक्त है। केश-सी सूक्ष्म रक्तवाहिनियों को कैशिका नाड़ी (Caplliary) कहते है। ये छोटी-छोटी नाड़ियॉ वायु-कोष्ठ के पतले परदे के ऊपर आकर मिल गई है। यहॉ हृदय से ताड़ित होकर छोटी-छोटी नलियो मे जो रक्त जाता है, वह वायु-कोष्ठ के पतले परदे और कैशिका नाड़ी की आच्छादनी से पृथक् हो जाता है। उस समय कोष्ठस्थ वायु कैशिका नाड़ो के ऊपर क्रिया करके काले शैरिक रक्त को लाल रंग का बनाता है। उसके उपरांत वही रक्त फुप्फुस और उसकी शिरा के भीतर होकर हृदय की बाईं ओर लौट जाता है। जिन नलियों के द्वारा हृदय से रक्त निकलता है, उन्हे धमनी, जिन नलियों के द्वारा हृदय के भीतर रक्त आता है, उन्हें

शिरा कहते हैं। पूर्व समय मे लोग धमनियों को वायु-नली समझते थे।

श्वास मे खिचा हुआ वायु शिरा के रुधिर को धमनी के रुधिर के रूप मे परिणत करने की शक्ति रखता है। इस कारण उसका रासायनिक विश्लेषण भी रहस्य-पूर्ण है। परीक्षा से देखा गया है कि उसमे दो गैस हैं—ओषजन (oxygen) और नत्रजन (nitrogen)। यह वायु-मंडल मे हवा के साथ मिला हुआ रहता है। उसमे $\frac{1}{5}$ भाग ओषजन, $\frac{4}{5}$ भाग यवक्षार-नत्रजन और थोड़ा अंगाराम्ल (Carbonic acid) रहता है।

हम लोगों के शरीर से जो अंगाराम्ल निकलता है, उसके गठन के विषय मे दो उपपत्तियाँ है। एक यह कि ओषजन हम लोगों की श्वास से खिची हुई हवा के साथ मिलकर फुफ्फुस के भीतर अंगार को अंगाराम्ल के रूप मे बदल देता है। दूसरी यह कि फुफ्फुस के भीतर ओषजन से अलग होकर नत्रजन रुधिर के साथ मिल जाता है, और संचरण-काल में अंगार के साथ उसका सम्मिश्रण होता है, जिससे शरीर से फुफ्फुस और चमड़े के भीतर से निकले हुए अंगाराम्ल की सृष्टि होती है।

निम्न-लिखित परीक्षा से देखा गया है कि झिल्ली के भीतर सुरासार से पानी बड़ी सहूलियत से चला जाता है। एक बोतल मे सुरासार और पानी मिलाकर खोलकर रख दो।

देखोगे, दोनों का परस्पर हवा के साथ अधिक संबंध है। हवा के साथ सुरासार का अधिक संबंध है, और बाधा न होने पर वह जल से जल्दी हवा के साथ मिल जाता है। किंतु यदि बोतल के मुँह में एक टुकड़ा मसाना बाँधकर कुछ दिन तक रख दिया जाय, तो देख पड़ेगा कि जल ने मसाने के भीतर होकर सुरासार को छोड़ दिया है। इस परीक्षा से यहाँ फुफ्फुस के रक्त के परिवर्तन को समझाने की चेष्टा की जायगी।

उल्लिखित बोतल के मुँह में मसाना जो चीज है, वही यांत्रिक व्यवस्था में वायुकोष्ठों (air vesiclas) के परदे और रक्तवहा नाड़ी की आच्छादनी भी है। रुधिर के साथ नत्रजन की अपेक्षा ओषजन का अधिक संवध है। इसलिये नत्रजन की अपेक्षा ओषजन बहुत ही सहज में रक्त और वायु-मध्यस्थित झिल्ली में प्रवेश करता है। रुधिर से हवा के साथ अंगाराम्ल का अधिक संबंध है। यह रुधिर से बहुत ही सहूलियत के साथ रक्तवहा नाड़ी और वायु-कोष्ठ के परदे के भीतर होकर जाता है।

शैरिक रुधिर में अंगाराम्ल के कारण कृष्ण वर्ण की झलक पाई जाती है। जब यह दूपित रुधिर वायुनली के ऊपर होकर जाता है, तब वायुकोष्ठ का ओषजन उसके परदे और छोटी-छोटी रक्तवहा नाड़ियों की आच्छादनी में घुसकर शैरिक रुधिर के साथ मिल जाता है।

उस समय अंगाराम्ल शोरिक रुधिर को त्यागकर रक्तवहा नाड़ी की आच्छादनी और वायुकोष्ठ के अंदर जाकर हवा के साथ मिल जाता है। यह परिवर्तन ही रुधिर के वर्ण और स्वभाव को परिवर्तित करता है।

शरीर से जितना अंगाराम्ल निकलता है, उतनी ही फुफ्फुस के लिये विशुद्ध वायु की जरूरत होती है। यह व्यायाम और आहार के परिमाण से नियमित होता है। आलसी की अपेक्षा परिश्रमी को और मिताहारी की अपेक्षा पेटू को हवा की अधिक आवश्यकता होती है।

फुफ्फुस के आयतन, पंजरों की गति और वायु की विशुद्धता के ऊपर शरीर से निकले हुए अंगाराम्ल का परिमाण निर्भर है।

जब श्वास-यंत्र के आयतन के कारण श्वास से खिंची हुई हवा के परिमाण का तारतम्य होता है, तब फुफ्फुस का आयतन बड़ा होना चाहिए। यह बात निम्न-लिखित परीक्षा से समझ मे आ सकती है—

थोड़े सुरासार के साथ थोड़ा पानी मिलाकर एक वर्गफुट के मुँहवाले पात्र मे रखकर यदि उसका मुँह झिल्ली से बाँध दिया जाय, तो २४ घंटे मे पानी उड़ जायगा। यदि उसका मुँह केवल ६ वर्गइंच का हो, तो २४ घंटे मे केवल $\frac{1}{8}$ भाग जल उड़ जायगा। यदि उसका मुँह दो वर्गफीट का हो, तो पानी १२ घंटे मे उड़ जायगा। इसी नियम का फुफ्फुस के

बारे मे भी प्रयोग करो। सोचो, शरीर से २४ घंटे मे २०० घनफीट अंगाराम्ल निकालना पड़ेगा। यह गैस समय पर २००० वर्गफीट रस कोष्ठमय झिल्ली के भीतर होकर जायगा। यदि फुप्फुस आकृति मे कम हो, और १००० वर्गफीट रस-कोष्ठमय झिल्ली के अंदर होकर जाता हो, तो गैस शरीर से पूर्णतया नही निकलेगा। इस दशा मे रक्त शुद्ध नहीं होगा। फिर समझो कि २००० वर्गफीट झिल्ली २४ घंटे मे २०० फीट ओषजन भेजती है। यदि इसका आकार १½ भाग घट जाय, तो अम्लजन का युक्त परिमाण रुधिर मे नही प्रवेश करेगा। इस उदाहरण से स्पष्ट जाना जाता है कि पूर्ण विकसित हृदय और बृहदाकार फुप्फुस की विशेष आवश्यकता है, क्योंकि फुप्फुस का आकार बड़ा होने से रुधिर मे अधिक अम्लजन घूम सकेगा, और वह शरीर से अम्लजन को पूर्ण-रूप से दूर कर सकेगा।

बालक हो या युवा, तंग पोशाक पहनने से छाती का घेरा घट जायगा। बचपन मे खासकर छाती के ऊपर सदा तंग पोशाक पहनने से नम्नीय पंजर और उपास्थियाँ (Cartilage) सिकुड़ जाती है। इस कारण तंग पोशाक कभी न पहननी चाहिए।

यह याद रखना चाहिए कि छाती के नीचे की ओर का अंग अधिक चौड़ा होता है, और फुप्फुस के इसी ओर अधिक वायु-कोष्ठ है। इस कारण फुप्फुस के नीचे की ओर ⅔

अंश से अधिक परिमाण मे अंगाराम्ल रुधिर से निकल जाता और अधिक ओषजन रुधिर मे संचित होता है। इसलिये छाती के नीचे के पंजर को संकुचित करने से जितनी स्वास्थ्य-हानि होती है, उतनी छाती के ऊपरी भाग के संकुचन से नहीं।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि बुद्धि के दोष से यदि छाती का घेरा घटा दिया जाय, अथवा यदि यह दोष पुरुष-परंपरा से चला आ रहा हो, तो उसका क्या उपाय है ? इसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि खुली हवा मे फुप्फुस का उपयुक्त व्यायाम—ऊँचे स्वर से पढ़ना, गाना, सीधे होकर बैठना और हरएक साँस मे फुप्फुस को फुलाना—छाती के घेरे को बढ़ा सकता है। इन क्रियाओं मे से किसी एक को लगातार अधिक दिन तक करने से छाती का चौड़ा होना अनिवार्य है। परंतु यदि असमय मे अधिक फुप्फुस का व्यायाम किया जायगा, तो उससे आशानुरूप फल नहीं मिलेगा।

बड़े आकार के फुप्फुस मे, हरएक बाधाहीन निःश्वास मे, २० से ४० घनइंच तक वायु प्रवेश करता है। परंतु यदि पंजर और वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी की गति रुक जाय, तो रक्त शुद्ध न होगा। यदि पंजर का उन्नयन और वक्ष-उदर-मध्यस्थ पेशी का अवनयन इस प्रकार रुक जाय कि जहाँ २० घनइंच वायु की आवश्यकता है, वहाँ १० घनइंच वायु प्रवेश करे, तो फल यह होगा कि केवल आधा अंगाराम्ल शरीर से निकलेगा, और रुधिर को आवश्यक ओषजन का आधा भाग

ही मिलेगा। तब रुधिर का अनुपयुक्त जारण होगा, और दूषित पदार्थ भी आंशिक रूप से संशोधित होगा। वह दूषित रक्त हृदय की बाई ओर लौट आवेगा, और शारीरिक नियम के लंघन से सारे शरीर को हानि उठानी पड़ेगी।

मस्तिष्क की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ श्वास-क्रिया के ऊपर प्रभाव डालती हैं। भावना, दुःख अथवा चिंता मे पंजर को ऊँचा करनेवाली वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी और अन्यान्य पेशियों की संकुचन शक्ति इतनी घट जाती है कि फुप्फुस पूर्ण रूप से नही फैलता, और प्रश्वास की मात्रा भी घट जाती है। इन सब कारणों के प्रभाव से रक्त आंशिक शुद्ध होता है, और दैहिक शक्ति दुर्बल हो जाती है। इससे प्रायः शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों मे क्षय-रोग के बीज संचित होते है। फल यह होता है कि ऐसे लोगों को गंडमाला या क्षय-रोग के विकराल ग्रास मे पड़ना पड़ता है। ऐसी घटना मनुष्यों के अभाग्य से ही संघटित होती है। हर साल सैकड़ो आदमी इसी तरह अकाल-मृत्यु के शिकार बन जाते है।

पुरुष की अपेक्षा स्त्री और लड़कों की श्वास-क्रिया अधिक होती है। रोग मे—खासकर फुप्फुस के रोग मे- हृदय की क्रिया से सॉस लेना अधिक होता है। विश्राम की अवस्था मे, हरएक मिनट मे, स्वस्थ आदमी १४-१८ बार सॉस लेता है। साधारणतः हृदय का स्पंदन हर निःश्वास मे ४ बार होता है।

यदि कोई आदमी हरएक मिनट मे १८ बार सॉस छोड़

और हरएक बार २० घनइंच वायु ग्रहण करे, तो अभाव पूर्ण करने के लिये २४ घंटे में ५१,१८,४०० घनइंच वायु की आवश्यकता होती है।

निःश्वास की वायु में ½ भाग ओषजन रहना चाहिए। हर-एक निःश्वास से ओषजन का थोड़ा-सा अंश रक्तमय झिल्ली में घुसकर खून के साथ मिल जाता है। इस समय रुधिर भी कुछ अंगाराम्ल छोड़ देता है। यह अंगाराम्ल से मिला हुआ वायु दूसरी बार साँस लेने लायक नहीं रहता।

यह बात इस साधारण उदाहरण से समझा दी जा सकती है—चूने के पानी से भरे हुए एक पात्र में श्वास-प्रश्वास लेते रहो। थोड़ी देर में देखोगे, पानी के ऊपर एक सफ़ेद रंग की तह जम गई है। इसको कारबोनेट ऑफ़् लाइम कहते हैं।

यह अच्छी तरह मालूम है कि जहाँ अंगाराम्ल रहता है, वहाँ बत्ती नहीं जल सकती। प्रश्वास-वायु में अंगाराम्ल के होने का दूसरा प्रमाण इस परीक्षा से जाना जा सकता है—ऐसा एक ग्लास लो, जिसमें stop tap लगा हो। उसे पानी में डुबा दो। तब तक उसे डूबा रहने दो, जब तक वह भरकर हवा से खाली न हो जाय। उसके बाद उसको क्रमशः उठाकर श्वास-प्रश्वास लेते रहो। परंतु यह देखते रहना कि बाहर की हवा यथासंभव न जाने पावे। फिर उस वायु को श्वास द्वारा ग्रहण करो, और पानी में पात्र को डुबा दो। इसी क्रिया को बार-बार करो, और पात्र को श्वास के वायु से कई

बार भरो। फिर stop tap को घुमा दो, और पात्र के नीचे एक प्लेट रखकर उसके ऊपर कागज का एक ताव रख दो। पात्र का खुला हुआ मुँह पानी के नीचे रहना चाहिए। प्लेट को जल से पूर्ण रखने और stop tap को घुमा देने से बाहर की हवा पात्र के भीतर न घुस सकेगी। बत्ती जलाकर पात्र को उठाकर एकदम पलट दो। पर यह ध्यान रखना कि पात्र का मुँह कागज से ढका रहे। फिर कागज को उठाकर जलती हुई बत्ती भीतर कर दो। बत्ती की लौ, ओषजन के न रहने और अंगाराम्ल के रहने से, उसी समय बुझ जायगी। इससे स्पष्ट जाना जा सकता है कि शरीर की शक्ति की रक्षा करने में श्वास से हम लोग जो हवा लेते हैं, वह विशुद्ध होनी चाहिए। जो औरतें खासकर गरमी में मुँह को जाल से ढके रहती हैं, उनके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। उनका मुख मलिन और रुग्ण देख पड़ता है। उनके सिर में पीड़ा भी हुआ करती है। वह जाल विशुद्ध वायु के सेवन में बाधा डालता है, और उसके कारण श्वास में बार-बार अंगाराम्ल भीतर जाता है।

लड़कों को यह अच्छी तरह समझा देना चाहिए कि स्वास्थ्य का नियम तोड़ने से ईश्वरीय नियम नष्ट होता है, और शीघ्र ही रोग के रूप में उसका दंड भी भोगना पड़ता है।

जिस घर में अच्छी तरह हवा नहीं आती-जाती, वह यदि आदमियों से भर जाय, तो उसका ओषजन शोषित और अंगाराम्ल संचित होगा। ऐसी अवस्था में घर का प्रकाश फीका पड़

जायगा। जितना ओपजन वायु घट जायगा, उतना ही प्रकाश भी धीमा होकर बुझने के करीब हो जायगा। जिस घर की रोशनी साफ-साफ नहीं होती—तेज़ नही होती—वह घर सॉस लेने के लायक नहीं होता। इसी कारण कुएँ या तहखाने मे उतरते समय पहले एक दीपक लटकाना चाहिए। अगर बत्ती बुझ जाय, तो वहाँ अंगाराम्ल समझना चाहिए। उस दूपित गैस को निकाले विना उसमें उतरने से मृत्यु अवश्यंभावी है। हर २४ घंटे मे हम लोगों के फुप्फुस और चमड़े से भी दो पौड से अधिक दूषित पदार्थ निकलता है। यह दूषित वायु घर मे व्याप्त हो जाता है। वह दूर न होने से फुप्फुस सॉस लेने के लायक नहीं रहता।

ओषजन के अपसारण से, या अंगाराम्ल की अधिकता से, अथवा फुप्फुस और चमड़े से अंगाराम्ल के निकलने से, चाहे जिस कारण से हो, वायु दूपित होने पर रक्त दूषित होकर शरीर मे तरह-तरह की व्याधियाँ उत्पन्न कर सकता है। इस कारण घर, स्कूल, कारखाने आदि मे विशुद्ध हवा के आने और दूपित वायु के निकलने का प्रबंध रहना चाहिए। और कुछ दूपित होने पर उसका उपाय किया जा सकता है, किंतु भोजन या पोशाक के दूपित होने पर किसी चीज़ से उसका प्रतिविधान नहीं हो सकता।

स्कूल के मकान मे यदि अच्छी तरह हवा के आने-जाने का प्रबंध नहीं रहता, तो विद्यार्थियों के मस्तिष्क मे दूषित रक्त भर

जाता है, और मस्तिष्क ठीक-ठीक काम नहीं करता। फल यह होता है कि विद्यार्थी पढ़ने मे असमर्थ हो जाते है, उनकी सोचने की शक्ति लुप्त हो जाती है; और सिर की पीड़ा भी उन लोगों को घेर लेती है। अंगाराम्ल की अधिकता से ही ये बाते होती है।

ख़ासकर सोने का स्थान ऐसा हवादार होना चाहिए कि सबेरे की हवा संध्या-काल मे विश्राम-काल की हवा की तरह विशुद्ध हो। इससे सबेरे सिर की पीड़ा फिर न होगी। साथ ही कमजोर आदमी को भी सबेरे भूख लगेगी। हरएक रहने का स्थान ऐसा बनना चाहिए कि उसमे बिना किसी रुकावट के विशुद्ध वायु आ सके। दूषित वायु से शरीर कमज़ोर होता है। अमिताहार मे जितनी हानि नहीं होती, उससे अधिक हानि घर के दूषित वायु से होती है। जो लोग दिन-रात दर-वाजे बंद रखते है, उनका सदा रोगी बने रहना विचित्र ही क्या है?

शरीर का रक्त दूषित होने से क्या कुफल होता है, यह अब आगे बतलाया जाता है। जो कारण पहले बतलाए गए है, वे सब मिलकर या उनमे से कोई एक ही रुधिर को दूषित कर सकता है। स्वस्थ अवस्था का नियम यह है कि हड्डी के लिये साफ ख़ून की जरूरत होती है। यदि उसे साफ ख़ून न मिला, तो वह कोमल, भंगुर और रोग-संकुल हो जाती है। स्वास्थ्य की दूसरी दशा यह है कि चार सौ पेशियों के लिये साफ ख़ून

की जरूरत होती है। वे हड्डी के साथ लगी रहती और हड्डी के ऊपर हरकत करती है। पेशी के स्वास्थ्य और आकुंचन-शक्ति पर मनुष्य की गति-शक्ति और परिश्रम करने की शक्ति निर्भर है। उसकी गति-शक्ति के यंत्रों मे यदि दूपित रक्त भर जाय, तो वे कमजोर हो जायँगे। चलने की शक्ति और वैसा तेज नहीं रहेगा। उसकी हरएक पेशी अपना काम करने में असमर्थ हो जायगी। आमाशय और अन्यान्य यंत्रों को भी, जिनके ऊपर पाचक शक्ति निर्भर है, दूषित रक्त मिलेगा। इससे आमाशय कमजोर, भूक कम और आँतें विशृंखल हो जायँगी। अजीर्ण-रोग उत्पन्न होगा। वह दूपित रक्त फुफ्फुस की परिपोपक धमनी मे भी जायगा। इन कोमल यंत्रों के स्वास्थ्य और शक्ति के लिये विशुद्ध रक्त की आवश्यकता होती है। रक्त शुद्ध न होने से ये यंत्र शक्ति-हीन हो जाते है। ये फिर दूपित रक्त को शुद्ध नहीं कर सकते। वह काला दूपित रक्त चमडे मे जाकर मनुष्य के स्वास्थ्य और सौदर्य को नष्ट कर देता है। फल यह होता है कि चमड़े के ऊपर दाने निकल आते है। इस दशा को दूर करने के लिये चाहे हजारों दवाएँ कर डालो, मगर जब तक असली कारण न दूर होगा, तब तक किसी सुफल की संभावना नही।

पहले कहा जा चुका है कि विशुद्ध वायु का मिलना और वक्त-उदर-मध्यस्थ पेशी की क्रिया मे रुकावट न पड़ना दुर्बल व्यक्तियों के लिये विशेष आवश्यक है। विशुद्ध वायु न मिलने

से गंडमाला-रोग बड़ी जल्दी हो जाता है। ज्वर के हाथ से बचने के लिये विशुद्ध वायु ही एक प्रकार की महौषधि है। ज्वर के समय बहुतेरे आदमी ठंडक लगने के डर से दरवाज़े और खिड़कियाँ बंद रखते हैं। पर वे यह नही जानते कि ऐसा करने से घर मे दूषित वायु भर जायगा। रक्त को शुद्ध रखने के लिये विशुद्ध वायु की बड़ी ज़रूरत है। रक्त शुद्ध रहने से शरीर की शक्ति जल्दी नही घटती, और इससे रोग भी रोगी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते।

सप्तम अध्याय

आँख

आँख एक प्रकार का गोलाकार पदार्थ है। यह तीन तहों के भीतर है। वे तहें प्याज के छिलके की तरह है। बाहर की तह कठिन और तंतुमय है। यह घनत्वक् (sclerotic) के नाम से प्रसिद्ध है। बीच की तह रक्तवहा नाड़ी से परिपूर्ण है। इसको कृष्णावरक (choroid) कहते है। भीतर की तह आलोकानुभावक है। इसको चित्रपत्र (retina) कहते है। चक्षुगोलक एक कक्षा मे अवस्थित और पीछे लगी हुई एक खास पेशी से चलता-फिरता है। करोटी के पीछे घिरे हुए एक स्थान के भीतर होकर दर्शन-नाड़ी (optic nerve) अक्षि-गोलक से मस्तिष्क तक चली गई है। सामने अक्षिपुर-नामक दो स्वाधीनगतिशील परदे है। कक्षा के बाहर अश्रुग्रंथियॉ (lachrymal gland) है। अश्रुग्रंथि सदा रस निकालकर आँख के अगले हिस्से को भिगो देती है। अधिक आँसू निकलने पर ये दोनो गॉठें छोटे-छोटे दो गढ़ो मे चली जाती है। आँख के सामने एक स्वच्छ खिड़की है। इसको कनीनिका (cornea) कहते है। इस आलोकत्वक् के भीतर होकर प्रकाश भीतर जाता है। प्रकाश की किरणें आँख की

कोमल गठन के लिये तीव्र न हो सकें, इसलिये रंगीन व्यूह-तंतु-मंडल, जिसको उपतारा (Iris) कहते हैं, कनीनिका के ठीक नीचे है। वह मंडल दर्शन के लिये प्रकाश की न्यूनाधिकता के अनुसार बड़ा या छोटा हो सकता है। इस मंडल के जिस गढ़े से प्रकाश प्रवेश करता है, वह चक्षुतारा (Pupil) कहलाता है। यह चक्षुतारा यथेष्ट किरणों के भीतर आने के लिये सदा आकुंचित और प्रसारित होता है। चक्षुतारा के पीछे ताल (lens) है। यह देखने मे बिल्लौर-सा साफ है, और इसमे छोटी-छोटी गठन की परिवर्तनशील पेशियाँ लगी हुई है। आँख देखने मे ठीक फोटोग्राफी के यंत्र की तरह है। जिस तरह कैमरे मे वस्तु का प्रतिबिंब पड़ने से चित्र खिंच जाता है, वैसे ही वही बात आँख में भी होती है। चित्रपत्र मे वस्तु का प्रतिबिंब आकर पड़ता है। चित्रपत्र का दर्शन-नाड़ी के साथ संबंध है। इसलिये जो चित्र उसके ऊपर पड़ता है, वह ताल के भीतर होकर मस्तिष्क मे पहुँचता है। वहीं दृष्टि का अनुभव होता है।

अष्टम अध्याय

कान

हम लोग जिनको कान कहते है, उन्हे वास्तव मे बाहरी कान कहना चाहिए। सुनने का यंत्र तो करोटी की दीवार मे अवस्थित है। जो नली बाह्य कर्ण मे उद्घाटित हुई है, उसमे, यदि हम तीव्र प्रकाश से देखे, तो ऊपरी भाग से चमकता हुआ ढक्का का १ ? भाग देख पड़ेगा। ढक्का ठीक कुहर मे लगी हुई है, इसलिये अधिक दूर तक नही देख पड़ती। थोड़ी ही दूर पर मध्य-कर्ण अवस्थित है। इसका भातरी भाग देखने मे छोटा और विशृंखल है। इसमे तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ कान की ढक्का के साथ संयुक्त है। कान के बीच से कंठ तक कंठकर्णी-नाली (Custachian tube) नाम की एक लंबी राह है। वही कान के बीच मे हवा भरकर ढक्का को कसे रखती है। कान के बीच की आकृति जटिल है। इसमे एक झिल्ली का थैली शंखदेशीय अस्थि (temporal bone) के बीच गढ़े मे लटक रही है। यह झिल्ली जिस स्थान के साथ संयुक्त है, उसी मे कान के बीच की हड्डियाँ संश्लिष्ट है, और वे श्रवणेंद्रिय से संबंध रखनेवाली नाड़ी की तंतुओं से संलग्न हैं। वायु का स्पंदन बाह्य कर्ण-नली और उसके

सन्निकटवर्ती स्थानों से ढक्का के भीतर वाहित होता और ढक्का के बीच कानों मे प्रवेश करता है। यह स्पंदन झिल्ली की थैली के अभ्यंतरस्थ श्रवणेंद्रिय-सूचक नाड़ी के शेष भाग से गृहीत होकर जब मस्तिष्क मे पहुँचता है, तब शब्द का अनुभव होता है।